नमस्कार महामंत्र

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच णमोक्कारो, सव्व-पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥



// श्री महावीराय नमः //

// जय नानेश //

// जय रामेश //

जैन संस्कार पाठ्यक्रम
भाग - 8

सकलनकर्ता

मदनलाल कटारिया

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

वीकानेर

जैन संस्कार पाठ्यक्रम भाग -8

संस्करण - प्रथम, सन् 2005, प्रतियाँ - 2100

द्वितीय, सन् 2009, प्रतियाँ - 2100

मूल्य - रुपये 8/-

अर्थ सौजन्य : शासननिष्ठ दानवीर श्रेष्ठिवर्य श्री विमलचन्दजी सोहनलालजी सिपाणी परिवार, बैंग

पुस्तक एवं परीक्षा फार्म प्राप्ति स्थल

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ,
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर (राज.) फोन-0151-2544867, 3292177

श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार
समता भवन, नौलाईपुरा, रतलाम-457001 (म.प्र.) फोन-07412-244443

Sampat Nursing Home
4, Nachiappa Street, Mylapore, CHENNAI-600004 ☎ : 4980572, 498002, 4980578

श्री सोहनलालजी विमलचंदजी सिपाणी
831, 13th मेन II ब्लॉक, कोरमंगला, बैंगलोर
☎ 25537878 (नि), 25537833 (ऑ.)

आचार्यश्री नानेश ध्यान केन्द्र
पद्मिनी मार्ग, राणा प्रतापनगर रोड, उदयपुर (राज.) ☎ : 0294-2490717 Fax · 2490306

श्री सायरचन्दजी छल्लाणी
पारसमनी, 4 वेस्ट प्रतापनगर, मेन पटेल नगर, न्यू देहली
☎ 0124 - 5052629, 011 - 25883344

श्री पृथ्वीराज जी पारख
पारख ट्रेडर्स, आपापुरी, कचहरी रोड पो. दुर्ग - 491001
फोन (0788) 2324255 (नि.) 2324554 (ऑ)

प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर - 334005 (राज.)
फोन (0151) 2544867, 3292177

मुद्रक
[illegible] प्रिन्टर्स प्रा. लि., 109, स्टेशन रोड, रतलाम (म.प्र.)
फोन (07412) 23[illegible]557

भूमिका

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ द्वारा अनेक धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियाँ चलाई जा रही है, जिनमे 'धार्मिक परीक्षा बोर्ड' भी एक है, सन् 1974 से ये परीक्षा निरन्तर चल रही हैं जिसके माध्यम से ज्ञानार्जन करने वालो के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित कर परीक्षाएँ ली जाती रही हैं। विभिन्न प्रसगो पर परमागम रहस्यज्ञाता, व्यसनमुक्ति प्रणेता 1008 श्रद्धेय गुरुवर आचार्य श्री रामलालजी म सा से तत्त्व चर्चा का अवसर प्राप्त होता रहा है। तत्त्व चर्चा के दौरान बदलते परिवेश के अनुरूप नए पाठ्यक्रम की आवश्यकता अनुभूत हुई।

अतएव जैन सस्कार पाठ्यक्रम के नाम से नवीन पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है जिसमे भाग1 से 12 तक प्रस्तुत किए गए हैं, जो वर्ष 2003 से निरन्तर गतिमान है। इससे जैन धर्म के मूल सिद्धान्तो का ज्ञान प्राप्त होगा तथा विशेष ज्ञानार्जन प्राप्त कर जीवन मे कुछ पा सकेगे, ऐसा विश्वास है। पाठ्यक्रम को सुरुचिपूर्ण एव सुबोध बनाने के लिए साहित्य की विविध विधाओ से सम्पन्न बनाया गया है।

पाठ्यक्रम के सकलन मे प्रत्यक्ष एव परोक्ष रूप से जिनका भी मार्गदर्शन एव सहयोग मिला, उनके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते है।

सभी श्री सघो एव चातुर्मासिक क्षेत्रो के धर्मानुरागी भाई-बहिनो से अनुरोध है कि अधिक-से-अधिक इन परीक्षाओ मे भाग लेकर ज्ञान की श्रीवृद्धि मे योगदान प्रदान करे। इसी शुभेच्छा के साथ।

विनीत

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर

परीक्षा के नियम

परीक्षा मे भाग लेने वाले विद्यार्थियों को फार्म भरना आवश्यक है कम से कम दस परीक्षार्थी होने पर परीक्षा केन्द्र खोला जा सकेगा।

1. पाठ्यक्रम - भाग 1 से 12 तक

2 योग्यता - ज्ञानार्जन का अभिलाषी

3. परीक्षा का समय - माह आसोज, विदी पक्ष

4. श्रेणी निर्धारण

विशेष योग्यता - 75% से 100%

प्रथम श्रेणी - 60% से 74%

द्वितीय श्रेणी - 46% से 59%

तृतीय श्रेणी - 35% से 45%

5. परीक्षा फल - परीक्षा फल का प्रकाशन पत्रिका श्रमणोपासक में तथा परीक्षा केन्द्रो पर उपलब्ध रहेगा।

6. प्रमाण-पत्र - सम्बन्धित परीक्षा केन्द्रों पर प्रमाण-पत्र भिजवाये जाएंगे।

7. पारितोषिक - प्रत्येक परीक्षा मे प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा प्रोत्साहन पुरस्कार।

अनुक्रम

क्रं.	विभाग	पृष्ठ संख्या	अंक 100
I	**सूत्र विभाग**		35
	1. सुख विपाक श्रुत अर्थ सहित	3	
II	**तत्व विभाग**		25
	1. दया का थोकडा	29	
	2. तीन जागरणा थोकडा	30	
	3. मोक्ष का मूल संयम	33	
	4. श्रावक की 11 प्रतिमाएँ	34	
	5. गुणस्थान स्वरूप	37	
III	**कथा विभाग**		10
	1. उत्कृष्ट भोगी-उत्कृष्ट योगी - धन्ना शालीभद्र	56	
	2. मुनि गजसुकुमाल	62	
	3. महासती मदनरेखा	67	
IV	**काव्य विभाग**		15
	1. परमात्म बत्तीसी	76	
	2. नमिराज ऋषि के उत्तर	81	
	3. निर्वाण का मार्ग	82	
V	**सामान्य ज्ञान विभाग**		15
	1. तीर्थकर के चौतीस अतिशय	84	
	2 दान	86	
	3. सुभाषित	90	

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस अस्वाध्याय के कारणों को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए।

क्र.	नाम	आकाश संबंधी 10 अस्वाध्याय	कालमर्यादा
1.	उल्कापात	'टूटता हुआ तारा, पीछे रेखा युक्त प्रकाश'	एक प्रहर
2.	दिग्दाह	दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पडे कि दिशा मे आग सी लगी है	जब तक रहे
3.	गर्जित	अकाल मे मेघगर्जना हो तो	दो प्रहर
4.	विद्युत	अकाल में बिजली चमके तो	एक प्रहर
5.	निर्घात	बिजली कडके तो	आठ प्रहर
6.	यूपक	शुक्ल पक्ष की 1-2-3 की रात	प्रहर रात्रि तक
7.	यक्षादीप्त	आकाश मे यक्ष का चिह्न	जवतक दिखाई दे
8-9	धूमिका-मिहिका-	काली और सफेद धूंअर	जव तक रहे
10.	रज उद्घात	आकाश मंडल धूली से आच्छादित	जब तक रहे

नक्षत्र 28 होते हैं, उनमें से आर्द्रानक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक 9. नक्षत्र वर्षा के गिने गए है। इनमें होने वाली मेघ गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अत इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है। **(स्थानाङ्ग सूत्र 10, उ. 1)**

औदारिक सम्बन्धी 10 अस्वाध्याय

11-13	हड्डी, रक्त मांस	ये तिर्यच के 60 हाथ के भीतर हो तो	3 प्रहर
		मनुष्य के 100 हाथ के भीतर हो तो	एक दिन रात
		मनुष्य की हड्डी 100 हाथ के भीतर यदि जली या धुली न हो तो	12 वर्ष तक

(आवश्यक निर्युक्ति पृ. 217)

14.	अशुचि	दुर्गंध आवे या दिखाई दे	तब तक
15.	श्मशान भूमि	100 हाथ के भीतर हो तो	स्वाध्याय नहीं करे
16	चंद्र ग्रहण	खंड ग्रहण, पूर्णग्रहण हो तो क्रमशः	8 प्रहर, 12 [illegible]

17. सूर्य ग्रहण	खंड ग्रहण, पूर्ण ग्रहण हो तो क्रमशः	12 प्रहर, 16 [illegible]
18. पतन	राजा या राज्याधिकारी के निधन होनेपर (नवीन राजा घोषित न हो)	तब तक
19. राजविग्रह	युद्ध स्थान के निकट	जब तक युद्ध चले
20. शव	पंचेन्द्रिय का शव पडा हो	जब तक रहे
21. चार महापुर्णिमा	1. आषाढी पूर्णिमा 2. अश्विनी पूर्णिमा	दिन-रात
	3. कार्तिकी पूर्णिमा 4. चैत्र की पूर्णिमा	दिन-रात
25-28 चार प्रतिपदा	इन पूर्णिमाओ के बाद की प्रतिपदा	दिन-रात
29-32 चार संधि समय	प्रातः, सायं, मध्याह्न और मध्य रात्रि 24 मिनिट पहले से 24 मिनिट बाद तक	1-1 मुहुर्त

(स्थानाङ्ग सूत्र 4)

विशेष नोट - 1. कुछ पुस्तको में उक्त 32 के अतिरिक्त भाद्र मास की पूर्णिमा एवं प्रतिपदा ये दो दिन और मिलाकर 34 अस्वाध्याय माने गए है। परन्तु ये दोनो अस्वाध्याय परपरा से माने गए है, इनका मौलिक प्रमाण कुछ भी नहीं है।

2. बालक-बालिका के जन्म का क्रमश. सात और आठ दिन का 100 हाथ के भीतर अस्वाध्याय माना जाता है।

3. गायादि के जर गिरती रहे तब तक, उसके गिरने के बाद तीन प्रहर तक।

4. कालिक सूत्र - 11 अंग, 4 छेद, तथा मूलसूत्र मे एक उत्तराध्ययन सूत्र। उपांग सूत्र मे जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति, निरयावलिया पंचक (कप्पिया, कप्पवडंसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वण्हिदसा, शेष सभी उत्कालिक सूत्र है। किन्तु 32वां आवश्यक सूत्र **नोकालिक नोउत्कालिक** शास्त्र है।

कालिक सूत्र की स्वाध्याय दिन एवं रात्री के प्रथम एवं अन्तिम प्रहर मे [illegible] सूत्र की स्वाध्याय किसी भी समय अस्वाध्याय के कारणों को टालकर करना [illegible]।

5. स्वाध्याय का वाचन करने के पश्चात 'आगमे तिविहे' का पाठ बोले।

6. [illegible] प्रहर लगभग 3 घंटे का होता है।

7. आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र [illegible] 21 [illegible] है।

द्वितीय श्रुतस्कन्ध : सुखविपाक सूत्र

प्रथम अध्ययन

1- तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णांम णयरे होत्था। रिद्धित्थिमियसमिद्धे गुणसिलए चेइए। सुहम्मे अणगारे समोसढे। जम्बू जाव पज्जुवासइ एवं वयासी- जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं दुहविवागाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, सुहविवागाणं भन्ते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपतेणं के अट्ठे पण्णते ? तए णं से सुहम्मे अणगारे जंबु अणगारं एवं वयासी- 'एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा गाथा-

सुबाहू भद्दणंदी य सुजाए, सुवासवे तहेव जिणदासे
धणवई य महब्बले भद्दणंदी महचंदे वरदत्ते ।।

1 अर्थ - उस काल तथा उस समय मे राजगृह नगर था वह ऋद्धि और वैभव से समृद्ध था, उसके अन्तर्गत गुणशीलनामक चैत्य- उद्यान मे अनगार श्रीसुधर्मा स्वामी पधारे। उनकी पर्युपासना-सेवा मे सलग्न रहे हुए श्री जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया- प्रभो ! यावत् मोक्ष रूप परम स्थिति को सप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने यदि दु ख-विपाक का यह (पूर्वोक्त) अर्थ प्रतिपादित किया, तो यावत् मुक्ति को सप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने सुखविपाक का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है?

(विनयशील अन्तेवासी) आर्य जम्बू की इस जिज्ञासा के उत्तर मे अनगार श्रीसुधर्मा स्वामी जंबू अनगार के प्रति इस प्रकार बोले- हे जम्बू ! यावत् निर्वाणप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने सुख-विपाक के दस अध्ययन प्रतिपादित किए हैं। वे इस प्रकार है-

(1) सुबाहु (2) भद्रनंदी (3) सुजात (4) सुवासव (5) जिनदास (6) धनपति (7) महाबल (8) भद्रनदी (9) महचद्र और (10) वरदत्त।

2-'जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं

दस अज्झयणा पण्णत्ता। पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स सुहविवागाणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? तए णं से सुहम्मे अणगारे जंबु अणगारं एवं वयासी-

2 अर्थ- हे भगवन ! यावत् मोक्षसम्प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने यदि सुखविपाक के सुबाहुकुमार आदि दस अध्ययन प्रतिपादित किये हैं तो हे भगवन् ! मोक्ष को उपलब्ध श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सुख-विपाक के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कथन किया है?

इस प्रश्न के उत्तर मे श्री सुधर्मा स्वामी ने श्री जम्बू अनगार के प्रति इस प्रकार कहा-

3- एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिसीसे णामं णयरे होत्था- रिद्धित्थमियसमिद्धे। तत्थ णं हत्थिसीसस्स णयरस्स वहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं पुप्फ-करंडए णामं उज्जाणे होत्था, सव्वोउय-पुप्फ-फल-समिद्धे रम्मे णंदणवणप्पगासे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरुवे पडिरुवे। तत्थ णं कयवणमालपियस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था, दिव्वे.।

तत्थ णं हत्थिसीसे णयरे अदीणसत्तू णामं राया होत्था, महया हिमवंत- रायवण्णओ। तस्स णं अदीणसत्तुस्स रण्णो धारिणीपामोक्खं देवीसहस्सं ओरोहे यावि होत्था।

3 अर्थ- इस प्रकार निश्चय ही हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय में हस्तिशीर्ष नाम का एक बडा ऋद्ध-भवनादि के आधिक्य से युक्त, स्तिमित-स्वचक्र-परचक्र के भय से मुक्त, समृद्ध-धन-धान्यादि से परिपूर्ण नगर था। उस नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिशा में अर्थात् ईशान कोण मे सब ऋतुओ मे उत्पन्न होने वाले फल-पुष्पादि से युक्त पुष्पकरण्डक नाम का एक (रमणीय) उद्यान था। उस उद्यान में कृतवनमाल-प्रिय नामक यक्ष का यक्षायतन था। जो दिव्य- प्रधान एवं सुंदर था।

इस हस्तिशीर्ष नगर में अदीनशत्रु नामक राजा राज्य करता था, जो [illegible] हिमालय आदि पर्वतों के समान महान् था। उस अदीनशत्रु राजा के अन्तःपुर में [illegible] [illegible] प्रधान है, ऐसी [illegible] रानियाँ थीं।

सुबाहु का जन्म : गृहस्थजीवन

4- तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि वासभवणंसि सीहं सुमिणे जहा मेह जम्मणं तहा भाणियव्वं; णवरं सुबाहुकुमारे जाव अलंभोगसमत्थे यावि जाणंति, जाणित्ता अम्मापियरो पंच पासायवडिंसगसयाइं करेंति अब्भुग्गयमूसियपहसियविवभवणं। एवं जहा महाबलस्स रण्णो। णवरं पुप्फचूला पामोक्खाणं पंचण्हं रायवरकण्णा सयाणं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हावेइ। तहेव पंचसयाइं दाओ, जाव उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाण मत्थेहिं जाव विहरइ।

अर्थ- तदनन्तर एक समय राजकुल उचित वासभवन मे शयन करती हुई धारिणी देवी ने स्वप्न मे सिह को देखा। जैसे ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र मे वर्णित मेघकुमार का जन्म कहा गया है, उसी प्रकार पुत्र सुबाहु के जन्म आदि का वर्णन भी जान लेना चाहिए। यावत् सुबाहुकुमार सांसारिक कामभोगो का उपभोग करने मे समर्थ हो गया। तव सुवाहुकुमार के माता-पिता ने उसे बहत्तर कलाओ मे कुशल तथा भोग भोगने मे समर्थ हुआ जाना, और जानकर उसके माता-पिता ने जिस प्रकार भूषणो मे मुकुट सर्वोत्तम होता है, उसी प्रकार महलो मे उत्तम ऐसे पॉच सौ महलो का निर्माण करवाया, जो अत्यन्त ऊचे, भव्य एव सुंदर थे। उन प्रासादो के मध्य मे एक विशाल भवन तैयार करवाया, इत्यादि सारा वर्णन महाबल राजा की तरह जान लेना चाहिए। सुबाहुकुमार के विवाह मे विशेपता यह है कि - पुष्पचूला प्रमुख पॉच सौ श्रेष्ठ राजकन्याओ के साथ एक ही दिन मे उसका विवाह कर दिया गया। इसी तरह पॉच सौ का प्रीतिदान-दहेज उसे दिया गया। तदनन्तर सुवाहुकुमार ऊपर सुंदर प्रासादो मे स्थित, जिसमे मृदग बजाये जा रहे है, ऐसे नाट्यादि से उद्गीयमान होता हुआ मानवोचित मनोज्ञ विषयभोगो का यथारुचि उपभोग करने लगा।

सुबाहु का धर्म-श्रवण

5- तेणं कालेणं तेणं समएणं, समणे भगवं महावीरे समोसढे। परिसा णिग्गया। अदीणसत्तू जहा कोणिए णिग्गए सुबाहूकुमारे वि जहा जमाली तहा रहेण णिग्गए, जाव धम्मो कहिओ। राया परिसा य पडिगया।

अर्थ- उस काल तथा उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी हस्तिशीर्ष नगर मे पधारे। परिषद् (जनता) धर्मदेशना सुनने के लिए नगर से निकली. जैसे महाराजा कोणिक निकला था, अदीनशत्रु राजा भी उसी तरह भगवद् दर्शन तथा देशनाश्रवण करने के लिए

निकला। जमालिकुमार की तरह सुवाहुकुमार ने भी भगवान् के दर्शनार्थ रथ से प्रस्थान किया। यावत् भगवान् ने धर्म का स्वरूप प्रतिपादित किया, परिषद् और राजा धर्मदेशना सुनकर वापस लौट गए।

गृहस्थधर्म का स्वीकार

6- तए णं से सुबाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, वंदित्ता णमंसइ, णमंसित्ता एवं वयासी-'सद्दहामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं जाव जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे राईसर सत्थ वाहपभइओ मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, णो खलु अहं तहा संचाएमि मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वयाइं सत्तसिक्खावयाइं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि।'

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।"

अर्थ- तदनन्तर सुबाहु कुमार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निकट धर्मकथा श्रवण तथा मनन करके अत्यन्त प्रसन्न हुए उठकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन, नमस्कार करने के अनन्तर कहने लगा- 'भगवान् ! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ यावत् जिस तरह आपके श्री चरणो में अनेकों राजा, राज्याधिकारी सार्थवाह आदि उपस्थित होकर, मुंडित होकर तथा गृहस्थावस्था से निकलकर अनगारधर्म मे दीक्षित हुए हैं, अर्थात् राजा, राज्याधिकारी आदि ने पंच महाव्रतो को स्वीकार किया है, वैसे मैं मुंडित होकर घर त्यागकर अनगार अवस्था को धारण करने में समर्थ नहीं हूँ। मै पाच अणुव्रतों तथा सात शिक्षाव्रतों का जिसमे विधान है, ऐसे बारह प्रकार के गृहस्थ धर्म को अंगीकार करना चाहता हूँ।

उत्तर में भगवान् ने कहा- "जैसे तुम्हें सुख हो वैसा, करो, किन्तु इसमें देर मत करो।"

7. तए णं से सुबाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता तमेव रहं दुरूहइ, दुरूहित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

अर्थ-ऐसा कहने पर सुबाहुकुमार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समक्ष पाच अणुव्रतों और सात शिक्षाव्रतो वाले बारह प्रकार के गृहस्थधर्म को स्वीकार किया अर्थात् उक्त द्वादशविध व्रतो के यथाविधि पालन करने का नियम ग्रहण किया। तदनन्तर उसी रथ पर सुबाहुकुमार सवार हुए और सवार होकर जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा मे वापस चले गये।

गौतम की सुबाहुविषयक जिज्ञासा

8- तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इन्दभूई णामं अणगारे जाव एवं वयासी-"अहो णं भंते ! सुबाहुकुमारे 1.इट्ठे, इट्ठरूवे, 2.कंते, कंतरूवे, 3.पिये, पियरूवे, 4. मणुण्णे, मणुण्णरूवे, 5.मणामे, मणामरूवे, सोमे, सुभगे, पियदंसणे सुरूवे, बहुजणस्सवि य णं भंते ! सुबाहुकुमारे इट्ठे इट्ठरुवे 5. सोमे जाव सुरूवे। साहुजणस्स वि य णं भंते ! सुबाहुकुमारे इट्ठे इट्ठरूवे जाव सुरूवे। सुबाहुणा भंते ! कुमारेणं इमा एयारूवा उराला माणुस्सरिद्धि किण्णा लद्धा? किण्णा पत्ता? किण्णा अभिसमण्णागया? को वा एस आसी" जाव किं णामए वा किं गोतए वा किं वा दच्चा किं वा भोच्चा किं वा समायरित्ता कस्स वा तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा जेणं इमेयारूवा माणुस्सरिद्धी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया?

8- उस काल तथा उस समय श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति गौतम अनगार यावत् इस प्रकार कहने लगे- 'अहो भगवन् ! सुबाहुकुमार (बहुजन इष्ट) बडा ही इष्ट, इष्टरूप, कान्त, कान्तरूप, प्रिय, प्रियरूप, मनोज्ञ, मनोज्ञरूप, मनोम, मनोमरूप, सौम्य, सुभग, प्रियदर्शन और सुरूप-सुन्दर रूप वाला है। अहो भगवान् ! यह सुबाहुकुमार साधुजनो को भी इष्ट, इष्ट रूप यावत् सुरूप लगता है।

भदन्त ! सुबाहुकुमार ने यह अपूर्व मानवीय समृद्धि कैसे उपलब्ध की? कैसे प्राप्त की? और कैसे उसके सन्मुख उपस्थित हुई? सुबाहुकुमार पूर्वभव मे कौन [illegible] इसका नाम और गोत्र क्या था? किस ग्राम अथवा बस्ती मे उत्पन्न हुआ देकर, क्या उपभोग कर और कैसे आचार का पालन करके और किस [illegible]

एक भी आर्यवचन को श्रवण कर सुबाहुकुमार ने ऐसी यह ऋद्धि एवं लब्धि प्राप्त की है, कैसे यह समृद्धि इसके सन्मुख उपस्थित हुई है?

विवेचन- सुबाहुकुमार की व्यावहारिक जीवन जीने की कला इतनी अद्भुत और आकर्षक थी कि वह आम जनसमुदाय का प्रीति-भाजन बन गया। उससे सभी प्रसन्न थे। प्राणो के अन्तराल से उसे चाहते थे। जन-मन के हृदय में देवता की तरह उसने स्थान बना लिया था। इतना ही नहीं, वह साधुजनो का भी स्नेहपात्र बन गया था। आध्यात्मिक साधना की दिशा मे प्रतिपल जागृत व प्रगतिशील रहने के कारण नि:स्वार्थ, स्वभावतः अनासक्त एवं निष्काम वृत्ति वाले साधुपुरुषों के हृदय मे भी सुबाहु का प्रेम-पूर्ण स्थान बन गया। यहाँ सुबाहुकुमार के लिये जो अनेक विशेषण प्रयुक्त किए गए हैं, वे सामान्य दृष्टि से समानार्थक प्रतीत होते हैं, किन्तु उन सब के अर्थ मे थोड़ा अन्तर है, जो इस प्रकार है-

इष्ट- जो चाहने योग्य हो, जिसकी इच्छा की जाय, वह इष्ट होता है।

इष्टरूप- किसी की चाह उसके विशेष कृत्य को उपलक्षित करके भी सम्भव है, अत: इष्टरूप अर्थात् उसकी आकृति ही ऐसी थी जिससे इष्ट प्रतीत होता था।

कान्त- इष्टरूपता भी अन्यान्य कारणो से संभवित है, अत: स्वरूपतः कान्त-रमणीय था।

कान्तरूप- सुंदर स्वभाव वाला। (सुबाहु की इष्टता में उसका सुंदर स्वभाव कारण था।)

प्रिय- सुंदर स्वभाव होने पर भी कर्म के प्रभाव से प्रेम उत्पन्न करने मे असमर्थ रह सकता है, अतः प्रेम का उत्पादक जो हो, वह प्रिय।

प्रियरूप- जिसका रूप प्रिय- प्रीतिजनक हो।

मनोज्ञ-मनोज्ञरूप- आन्तरिक वृत्ति मे जिसकी शोभनता अनुभव में आए [illegible], उसके रूप वाला मनोज्ञरूप कहलाता है।

मनाम, मनामरूप- [illegible] मनोज्ञता [illegible] हो सकती है, [illegible] जिसका [illegible] सुंदरता का स्मरण [illegible] किया जाए।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सुरूप- सुन्दर आकार तथा स्वभाव वाले को सुरूप कहते है।

प्रियदर्शन- प्रेम का जनक आकार और उस आकार वाला।

भगवान् द्वारा समाधान

9- एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणाउरे णामं णयरे होत्था, रिद्धत्थमियसमिद्धे। तत्थ णं हत्थिणाउरे णयरे सुमुहे णामं गाहावई परिवसइ, अड्ढे। दित्ते जाव अपरिभूए।

9- हे गौतम ! उस काल तथा उस समय मे इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के अन्तर्गत भारत-वर्ष मे हस्तिनापुर नाम का एक ऋद्ध, स्तमित एवं समृद्ध नगर था। वहा सुमुख नाम का धनाढ्य गाथापति रहता था। वह दीप्तिमन्त यावत् लोगो द्वारा अपराभूत यानि रुवाबदार व्यक्तित्व होने के कारण किसी से हटाया नही जा सकता था।

10- तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसे णामं थेरे जाइसंपण्णे जाव पंचहिं समणसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव हत्थिणाउरे णयरे, जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हइ उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

10- उस काल तथा उस समय उत्तम जाति और कुल से सपन्न अर्थात् श्रेष्ठ मातृपक्ष एवं पितृपक्ष वाले यावत् पांच सौ श्रमणो से परिवृत हुए धर्मघोष नामक स्थविर (जाति, श्रुत व पर्याय से वृद्ध) क्रमपूर्वक चलते हुए तथा ग्रामानुग्राम विचरते हुए हस्तिनापुर नगर के सहस्त्राम्रवननामक उद्यान मे पधारे। पधार कर वहा यथा प्रतिरूप- अनगार धर्म के अनुकूल अवग्रह (आश्रयस्थान) को ग्रहण करके सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

विवेचन- स्थविर शब्द का सामान्य अर्थ वृद्ध या वडा साधु होता है। स्थानाग मे तीन प्रकार के स्थविर बताये है- 1. जातिस्थविर 2. श्रुतस्थविर 3 साठ वर्ष की अवस्था वाला मुनि जातिस्थविर कहलाता है। स्थानाग का पाठी श्रुतस्थविर गिना जाता है। कम से कम वीस वर्ष की दी पर्यायस्थविर माना जाता है। (स्थानाग सूत्र स्थान 3 उ: 3) व

गणधरों को भी स्थविर पद से सम्बोधित किया है।

11- तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसाणं थेराणं अंतेवासी सुदत्ते [illegible] अणगारे उराले जाव तेउलेसे मासं मासेणं खममाणे विहरइ। तए णं से सुदत्ते अणगारे मासखमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, जहा गोयमसामी तहेव, धम्मघोसे थेरे आपुच्छइ, जाव अडमाणे सुमुहस्स गाहावइस्स गिहं अणुप्पविट्ठे।

अर्थ 11- उस काल और उस समय मे धर्मघोष स्थविर के अन्तेवासी- [illegible] उदार-प्रधान यावत् तेजोलेश्या को संक्षिप्त किए हुए (अनेक योजन प्रमाण वाले [illegible] स्थित वस्तुओ को भस्म कर देने वाली तेजोलेश्या- घोर तप से प्राप्त होने वाली लब्धि-विशेष, को अपने मे संक्षिप्त-गुप्त किए हुए) सुदत्त नाम के अनगार मास क्षमण का [illegible] करते हुए अर्थात् एक-एक मास के उपवास के बाद पारणा करते हुए विचरण कर रहे थे। एक बार सुदत्त अनगार मास-क्षमण पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते हैं, दूसरे प्रहर मे ध्यान करते हैं और तीसरे प्रहर मे श्री गौतम स्वामी जैसे श्रमण भगवान् महावीर से भिक्षार्थ गमन के लिए पूछते हैं, वैसे ही वे धर्मघोष स्थविर से पूछते हैं, यावत् भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए सुमुख गाथापति के घर में प्रवेश करते हैं।

12- तए णं से सुमुहे गाहावई सुदत्तं अणगारं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, करित्ता सुदत्तं अणगारं सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ- अणुगच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयहत्थेणं विउलं असणंपाणं, खाइमं, साइमं पडिलाभिस्सामि त्तिकट्टु तुट्ठे पडिलाभेमाणे वि तुट्ठे, पडिलाभिए वि तुट्ठे।

12- तदनन्तर वह सुमुख गाथापति सुदत्त अनगार को आते [illegible] देखकर अत्यन्त हर्षित और प्रसन्न होकर आसन से उठता है। आसन से [illegible] [illegible] आसन से नीचे उतरता है। उतरकर [illegible] [illegible]

करता है, वंदन करता है, नमस्कार करके जहा अपना भक्तगृह- भोजनालय था, वहॉ आता है। आकर अपने हाथ से विपुल अशन पान स्वादिम, खादिम का आहार का दान का लाभ प्राप्त करूंगा, इस विचार से अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त होता है। वह देते समय भी प्रसन्न होता है और आहारदान के पश्चात् भी प्रसन्नता का अनुभव करता है।

13- तए णं तस्स सुमुहस्स गाहावइस्स तेणं दव्वसुद्धेणं[1] दायगसुद्धेणं पडिग्गाहगसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं सुदत्ते अणगारे पडिलाभिए समाणे संसारे परित्तीकए, मणुस्साउए णिबद्धे ! गिहंसि य से इमाइं पंच दिव्वाइं[2] पाउब्भूयाइं, तंजहा-

1. वसुहारा वुट्ठा

2. दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाइए

3. चेलुक्खेवे कए

4. आहयाओ देवदुन्दुहिओ

5. अंतरा वि य णं आगासंसि 'अहो दाणं अहो दाणं' घुट्टे य।

तए णं हत्थिणाउरेणयरे सिंघाडग जाव पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एव माइक्खइ - 'धण्णे णं देवाणु- प्पिया ! सुमुहे गाहावई जाव तं धण्णे - णं देवाणुप्पिया सुमुहे गाहावई !'

अर्थ 13- तदनन्तर उस सुमुख गाथापति के शुद्ध द्रव्य (निर्दोष आहारदान) दाता एवं आदाता (ग्रहण करने वाले) की शुद्धि रूप से तथा त्रिविध, त्रिकरण शुद्धि से अर्थात्

नोट - 1 दव्वसुद्धेणं गाहग-सुद्धेण दायग-सुद्धेण-द्रव्य शुद्धि, ग्राहकशुद्धि और दाता की शुद्धि इस प्रकार है- देयशुद्धि- सुमुख गाथापति द्वारा निर्दोष आहार देना, दातृ-शुद्धि-दान से पहिले, दान देते समय और दान देने के पश्चात् सुमुख के चित्त मे आनन्द का अनुभव होना, हर्षित मन वाला होना। आदाता-ग्राहक मास-क्षमण-तपोधनी सुदत्त मुनि। इस प्रकार देय दाता व आदाता की पवित्रता से दान उत्तम फल-दायी होता है।

2 दिव्वाइं=1. देवता सम्बन्धी वसु-सुवर्ण और उसकी लगातार वृष्टि धारा कहलाती है। देवकृत सुवर्ण- वृष्टि को ही वसुधारा कहते है। 2 कृष्ण, नील, पीत, श्वेत और रक्त पाच रग पुष्पो मे पाए जाते है। देवो द्वारा बरसाए गए ये पुष्प वैक्रिय-लब्धिजन्य है, अत अचित्त होते है। 3 चेलोत्क्षेप- चेल-वस्त्र, उसका उत्क्षेप-फेकना चेलोत्क्षेप कहा जाता है। 4 देवदुन्दुभिनाद-देव-दुन्दुभियो का बजना। 5 आश्चर्य उत्पन्न करने वाले दान की 'अहो दान' सज्ञा है। जिस दान के प्रभाव से आकर्पित हो देवता स्वय [illegible] हों, उसे अहोदान शब्द से कहना युक्तिसगत ही है।

मन, वचन और काय की स्वाभाविक उदारता सरलता एवं निर्दोषता से सुदत्त अनगार के प्रतिलाभित होने पर अर्थात् सुदत्त अनगार को विशुद्ध भावना द्वारा शुद्ध आहार के दान से अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुए सुमुख गाथापति ने संसार को (जन्म-मरण की परम्परा को) बहुत कम कर दिया और मनुष्य आयुष्य का बन्ध किया। उसके घर में सुवर्णवृष्टि, पॉच वर्णो के फूलों की वर्षा, वस्त्रों का उत्क्षेप (फेंकना) देवदुन्दभियों का बजना तथा आकाश में 'अहोदान' इस दिव्य उद्घोषणा का होना- ये पॉच दिव्य प्रकट हुए।

हस्तिनापुर के त्रिपथ यावत् सामान्य मार्गो में अनेक मनुष्य एकत्रित होकर आपस में एक-दूसरे से कहते थे- हे देवानुप्रियो ! धन्य है सुमुख गाथापति ! सुमुख गाथापति सुलक्षण है, कृतार्थ है, उसने जन्म और जीवन का सुफल प्राप्त किया है जिसे इस प्रकार की यह मानवीय ऋद्धि प्राप्त हुई। वास्तव में धन्य है सुमुख गाथापति !

विवेचन- भावनाशील और सरलचेता दाता को दान देते हुए तीन बार हर्ष होता है- आज मैं दान दूंगा, आज मुझे सद्भाग्य से दान देने का स्वर्णावसर उपलब्ध हुआ है, यह प्रथम हर्ष ! फिर दान देने के समय उसके रोंये-रोंये में आनन्द उभरता है, यह दूसरा हर्ष ! और दान देने के पश्चात अन्तरात्मा में संतोष व आनन्द वृद्धिगत होता रहता है, यह तीसरा हर्ष।

दूसरी तरह देय, दाता व प्रतिग्राहक पात्र, ये तीनों ही शुद्ध हो तो वह दान जन्म-मरण के बन्धनो को तोडने वाला और संसार को परित्त-संक्षिप्त-कम करने वाला होता है।

14- तए णं से सुमुहे गाहावई बहूइ वासाइं आउयं पालेइ, पालित्ता काल मासे कालं किच्चा इहेव हत्थिसीसे णयरे अदीणसत्तुस्स रण्णो धारिणीए देवीए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए उववण्णे। तए णं सा धारिणी देवी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी तहेव सीहं पासइ, सेसं तं चेव जाव उप्पिं पासाए विहरइ।

तं एवं खलु, गोयमा ! सुबाहुणा कुमारेणं इमे एयारूवा माणुस्सरिद्धी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया।

14- तदनन्तर वह सुमुख गाथापति सैकडों वर्षो की आयु का उपभोग कर काल-मास मे काल करके इसी हस्तिशीर्षक नगर में अदीनशत्रु राजा की धारिणी देवी की कुक्षि मे पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ (गर्भ मे आया)। तत्पश्चात् वह धारिणी देवी किञ्चित् सोई और

किञ्चित् जागती हुई स्वप्न में सिह को देखती है। शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए। यावत् उन्नत प्रासादो मे मानव सम्बन्धी उदार भोगो का यथेष्ट उपभोग करता विचरता है।

भगवान् ने कहा- हे गौतम ! सुबाहुकुमार को उपर्युक्त महादान के प्रभाव से इस तरह की मानव-समृद्धि उपलब्ध तथा प्राप्त हुई और उसके समक्ष समुपस्थित हुई है।

15- "पभू णं भन्ते ! सुबाहुकुमारे देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए?"

'हंता पभू'।

तए णं से भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं से समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइं हत्थिसीसाओ णयराओ पुप्फकरंडयाओ उज्जाणाओ कयवण मालप्पियस्स- जक्खस्स जक्खायणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवय-विहारं विहरइ।

तए णं से सुबाहुकुमारे समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव पडिलाभे माणे विहरइ।

15- गौतम - प्रभो ! सुबाहुकुमार आपश्री के चरणो मे मुण्डित होकर, गृहस्थावास को त्याग कर अनगार धर्म को ग्रहण करने मे समर्थ है?

भगवान्- हॉ गौतम ! है । अर्थात् प्रव्रजित होने मे समर्थ है।

तदनन्तर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना व नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके संयम तथा तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने किसी अन्य समय हस्तिशीर्ष नगर के पुष्पकरण्डक उद्यानगत कृतवनमाल नामक यक्षायतन से विहार किया और विहार करके अन्य देशों मे विचरने लगे।

इधर सुबाहुकुमार श्रमणोपासक- देशविरत श्रावक हो गया। जीव अजीव आदि तत्वो का मर्मज्ञ यावत् आहारादि के दान-जन्य लाभ को प्राप्त करता हुआ समय व्यतीत करने लगा।

16- तए णं से सुबाहुकुमारे अण्णया कयाइं चाउद्दसट्ठ मुद्दिट्ठ पुण्णमासिणीसु जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ पडिलेहित्ता दब्भसंथारगं संथरइ संथरित्ता दब्भसंथारगं दुरुहइ, दुरुहित्ता अट्ठमभत्तं पगिण्हइ, पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए अट्ठमभत्तिए पोसहं पडिजागरमाणे विहरइ।

16- तत्पश्चात् किसी समय वह सुबाहुकुमार चतुर्दशी, अष्टमी, उद्दिष्ट-अमावस्या और पूर्णमासी, इन तिथियों में जहाँ पौषधशाला थी- पौषधव्रत करने का स्थान विशेष था- वहाँ आता है। आकर पौषधशाला का प्रमार्जन करता है, प्रमार्जन कर उच्चारप्रस्रवणभूमि-मल-मूत्र विसर्जन के स्थान की प्रतिलेखना-निरीक्षण करता है। दर्भसंस्तार-कुशा (घांस) के आसन को बिछाता है। बिछाकर दर्भ के आसन पर आरूढ होता है और अट्ठमभक्त-तीन दिन का लगातार उपवास ग्रहण करता है। पौषधशाला मे पौषधिक -पौषधव्रत धारण किए हुए वह, अष्टमभक्त सहित पौषध- अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों में करने योग्य जैन श्रावक का व्रत विशेष अथवा आहारादि के त्यागपूर्वक किए जाने वाले धार्मिक अनुष्ठान विशेष- का यथाविधि पालन करता हुआ अर्थात् तेला- के साथ पौषध करके विचरण करता है।

17- तए णं तस्स सुबाहुस्स कुमारस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेएयारुवे अज्झत्थिए समुप्पण्णे- धण्णा णं ते गामागर-णगर-जाव सण्णिवेसा जत्थ णं समणे भगवं महावीरे विहरइ।

धण्णा णं ते राइसर-जाव सत्थवाहप्पभइओ जे णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं पडिसुणंति

तं जइ णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागच्छेज्जा जाव विहरेज्जा, तए णं अहं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता जाव पव्वएज्जा।

17- तदन्तर मध्य रात्रि मे धर्मजागरण के कारण जागते हुए सुबाहुकुमार के मन में यह आन्तरिक विचार, चिन्तन, कल्पना, इच्छा एवं मनोगत संकल्प उठा कि - वे ग्राम आकर नगर, निगम, राजधानी, खेट (खेडे) कर्वट, द्रोणमुख, मडम्ब, पट्टन, आश्रम, संवाध और सन्निवेश धन्य हैं, जहाँ पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विचरते है।

वे राजा, राज्याधिकारी, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति और सार्थवाह आदि भी धन्य हैं जो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निकट मुण्डित होकर प्रव्रजित होते है।

वे राजा, राज्याधिकारी आदिक धन्य हैं जो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास पञ्चाणुव्रतिक और सप्त शिक्षाव्रतिक (पॉच अणुव्रतो एव सात शिक्षाव्रतो का जिसमे विधान है) उस बारह प्रकार के गृहस्थ धर्म को अङ्गीकार करते है।

वे राजा ईश्वर आदि धन्य है जो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास धर्म-श्रवण करते हैं।

सो यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पूर्वानुपूर्वी- क्रमश गमन करते हुए ग्रामानुग्राम विचरते हुए, यहॉ पधारे तो मै गृह त्याग कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास मुडित होकर प्रव्रजित हो जाऊँ।

18- तए णं समणे भगवं महावीरे सुबाहुस्स कुमारस्स इमं एयारूवं अज्झत्थियं जाव वियाणित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव हत्थिसीसे णयरे जेणेव पुप्फकरंडे उज्जाणे जेणेव कयवणमालपियस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हइ उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

परिसा राया णिग्गया। तए णं तस्स सुबाहुस्स कुमारस्स तं महया जहा पढमं तहा णिग्गओ। धम्मो कहिओ। परिसा राया पडिगया।

18- तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी सुबाहु कुमार के इस प्रकार के सकल्प को जानकर क्रमश ग्रामानुग्राम विचरते हुए जहॉ हस्तिशीर्षनगर था, और जहॉ पुप्फकरण्डक नामक उद्यान था, और जहॉ कृतवनमालप्रिय यक्ष का यक्षायतन था. वहॉ पधारे एव यथा प्रतिरूप-अनगार वृत्ति के अनुकूल अवग्रह-स्थानविशेष को ग्रहण कर सयम व तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए अवस्थित हुए।

तदनन्तर परिषदा व राजा दर्शनार्थ निकले। सुबाहु कुमार भी पूर्व ही की समारोह के साथ भगवान् की सेवा मे उपस्थित हुआ। भगवान् ने उस परिषद् कुमार को धर्म का प्रतिपादन किया। परिषद् और राजा धर्मदेशना सुन कर गये।

19- तए णं सेसुबाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे. जहा मेहो तहा अम्मापियरो आपुच्छइ। णिक्खमणाभिसेओ तहेव जाव अणगारे जाव इरिया-समिए जाव गुत्तबंभयारी।

तए णं से सुबाहू अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ छट्ठट्ठम तवोविहाणेहिं अप्पाणं भावित्ता बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाइं छेदित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववण्णे।

19- सुबाहु कुमार श्रमण भगवान् महावीर के पास से धर्म श्रवण कर उसका मनन करता हुआ (ज्ञाताधर्मकथा में वर्णित) श्रेणिक राजा के पुत्र मेघ कुमार की तरह अपने माता-पिता से अनुमति लेता है। तत्पश्चात् सुबाहु कुमार का निष्क्रमण-अभिषेक मेघ कुमार ही की तरह होता है। यावत् वह अनगार हो जाता है, ईर्यासमिति का पालक यावत् गुप्त ब्रह्मचारी बन जाता है।

तदनन्तर सुबाहु अनगार श्रमण भगवान् महावीर के तथारूप स्थविरो के पास से सामायिक आदि एकादश अङ्गों का अध्ययन करते है। अनेक उपवास, बेला, तेला आदि नाना प्रकार के तपों के आचरण से आत्मा को वासित करके अनेक वर्षों तक श्रामण्यपर्याय (साधुवृत्ति) का पालन कर एक मास की संलेखना (एक अनुष्ठान-विशेष जिसमे शारीरिक व मानसिक तप द्वारा कषाय आदि का नाश किया जाता है) के द्वारा अपने आपको आराधित कर साठ भक्तो-भोजनों का अनशन द्वारा छेदन कर अर्थात् 29 दिन का अनशन कर आलोचना व प्रतिक्रमणपूर्वक समाधि को प्राप्त होकर कालमास में काल करके सौधर्म देवलोक में देव रूप मे उत्पन्न हुए।

20- से णं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता माणुस्सं विग्गहं लभिहिइ, लभिहित्ता केवलं बोहिं बुज्झिहिइ, बुज्झिहित्ता तहारूवाणं थेराणं अंतिए मुंडे भविता जाव पव्वइस्सइ। से णं तत्थ बहूइं वासाइं सामण्ण परियागं पाउणिहिइ, पाउणिहित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सणंकुमारे कप्पे देवत्ताए उववण्णे।

से णं ताओ देवलोगाओ माणुस्सं, जाव पव्वएज्जा। बंभलोए।

तओमाणुस्सं। महासुक्के। तओ माणुस्सं। आणए देवे। तओ माणुस्सं तओ आरणे। तओ माणुस्सं, तओ सव्वट्ठसिद्धे।

से णं तओ अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे जाव अड्ढे जहा दढपइण्णे, सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिणिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ।

20- तदनंतर वह सुबाहु कुमार का जीव सौधर्म देवलोक से आयु, भव और स्थिति के क्षय होने पर व्यवधान रहित होकर देव शरीर को छोडकर सीधा मनुष्य शरीर को प्राप्त करेगा। प्राप्त करके शंकादि दोषो से रहित होकर केवली द्वारा बोधि का लाभ प्राप्त करेगा, बोधि उपलब्ध कर तथारूप स्थविरो के पास मुडित होकर साधुधर्म मे प्रव्रजित हो जाएगा। वहाँ वह अनेक वर्षो तक श्रामण्यपर्याय- सयम व्रत का पालन करेगा और आलोचना तथा प्रतिक्रमण कर समाधि को प्राप्त होगा। काल धर्म को प्राप्त कर सनत्कुमार नामक तीसरे देवलोक में देवता के रूप में उत्पन्न होगा।

वहाँ से पुनः मनुष्य भव प्राप्त करेगा। दीक्षित होकर यावत् ब्रह्मलोक नामक पाचवे देवलोक मे उत्पन्न होगा वहां से फिर मनुष्य भव मे सयमग्रहण करके महाशुक्र नामक देवलोक मे उत्पन्न होगा। वहाँ से च्यव कर फिर मनुष्य-भव मे जन्म लेगा और पूर्व की ही तरह दीक्षित होकर यावत् आनत नामक नवम देवलोक मे उत्पन्न होगा। वहाँ की भवस्थिति को पूर्ण कर मनुष्य भव मे आकर दीक्षित हो आरण नाम के ग्यारहवे देवलोक मे उत्पन्न होगा। वहाँ से च्यव कर मनुष्य-भव को धारण करके अनगार-धर्म का आराधन कर आयु के क्षय होने पर सर्वार्थसिद्ध नामक विमान मे उत्पन्न होगा। वहाँ से च्यवकर सुवाहुकुमार का वह जीव व्यवधान रहित महाविदेह क्षेत्र मे सम्पन्न कुलो मे से किसी कुल मे उत्पन्न होगा। वहाँ दृढ प्रतिज्ञ की भाँति चारित्र प्राप्त कर सिद्धपद को प्राप्त करेगा।

21- एवं खलु जम्बू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। त्ति बेमि।

॥ सुहविवागस्स पढमं अज्झयणं समत्तं॥

21- आर्य सुधर्मा स्वामी कहते है- हे जम्बू ! यावत् मोक्षसम्प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने सुखविपाक अग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है

ऐसा मै कहता हूँ।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त॥



द्वितीय अध्ययन

भद्रनन्दी

1-बिईयस्स उक्खेवो।

1- द्वितीय अध्ययन की प्रस्तावना पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए।

2- एवं खलु जबू तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभपुरे णयरे। थूभकरंडग उज्जाणं। धण्णो जक्खो। धणवहो राया। सरस्सई देवी। सुमिणदंसणं, कहणं, जम्मं, बालत्तणं, कलाओ य। जोव्वणे पाणिग्गहणं दाओ पासाया य भोगा य।

जहा सुबाहुस्स। णवरं भद्दणंदी कुमारे। सिरिदेवी पामोक्खाणं पंचसया सामिस्स समोसरणं। सावगधम्मं पडिवज्जेइ पुव्वभवपुच्छा। महाविदेहे वासे पुंडरीकिणी णगरीए। विजए कुमारे। जगबाहू तित्थयरे पडिलाभिए। मणुस्साउए णिबद्धे। इहं उववण्णे। सेसं जहा सुबाहुस्स जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिणिव्वाहिइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ। एवं खलु जबू। समेणणं भगवया महावीरेणं जाव संपतेणं सुहविवागाणं बिईयस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णते। तिबेमि।

॥ सुहविवागस्स बियं अज्झयणं समत्तं ॥

2- जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया कि श्रमण भगवान् महावीर ने सुखविपाक के दूसरे अध्ययन का क्या अर्थ कहा है? उत्तर में सुधर्मा स्वामी कहते हैं,- हे जम्बू उस काल तथा उस समय मे ऋषभपुर नाम का एक नगर था। वहॉ स्तूप करण्डक नामक उद्यान था। धन्य नामक यक्ष का यक्षायतन था। वहॉ धनावह नाम का राजा राज्य करता था। उसकी सरस्वती देवी नाम की रानी थी। महारानी का स्वप्न-दर्शन, पति से स्वप्न-वृत्तान्तकथन, समय आने पर बालक का जन्म, बालक का बाल्यावस्था मे कलाएं सीखकर यौवन को प्राप्त होना, तदनन्तर विवाह होना, माता-पिता के द्वारा दहेज देना और ऊँचे प्रासादों में अभीष्ट भोगोपभोगो का उपभोग करना, आदि सभी वर्णन सुबाहु कुमार ही की तरह जानना चाहिए। उसमें अन्तर केवल इतना है कि सुबाहुकुमार के बदले बालक का नाम 'भद्रनन्दी' था। उसका श्रीदेवी प्रमुख पाँच सौ देवियो के साथ (श्रेष्ठ राज्यकन्याओं के साथ) विवाह हुआ। तदनन्तर महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ, भद्रनन्दी ने श्रावकधर्म अंगीकार किया। गौतम स्वामी द्वारा उसके पूर्वभव सम्बन्धी प्रश्न करने पर भगवान् ने इस

प्रकार उत्तर दिया-

महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत पुण्डरीकिणी नाम की नगरी में विजय कुमार था। उसके द्वारा भी युगवाहू तीर्थंकर को प्रतिलाभित करना- दान देना, उससे मनुष्य आयुष्य का वन्ध होना, यहाँ भद्रनन्दी के रूप मे जन्म लेना, यह सब सुबाहुकुमार ही की तरह जान लेना चाहिए। यावत् वह महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न होकर सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा, निर्वाण पद को प्राप्त करेगा व सर्व दुःखों का अन्त करेगा।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥



तृतीय अध्ययन

सुजातकुमार

1- तईयस्स उक्खेवो।

1- तृतीय अध्ययन की प्रस्तावना भी यथापूर्व जान लेनी चाहिए।

2- वीरपुरेणामं णयरे। मणोरमे उज्जाणे। वीरकण्हे जक्खे मित्ते राया। सिरीदेवी। सुजाए कुमारे। बलसिरी पामोक्खाणं पंचसयकण्णा सामीसमोसरिए पुव्वभवपुच्छा। उसुयारे णयरे। उसभदत्ते गाहावई। पुप्फदंत्ते अणगारे पडिलाभिए। माणुस्साउए णिबद्धे। इह उववण्णे जाव महाविदेह वासे सिज्झिहिइ। बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिणिव्वाहिइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ।

॥ सुहविवागस्स तईयं अज्झयणं समत्तं ॥

2- श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा- हे जम्बू! वीरपुर नामक नगर था। वहाँ [illegible] का उद्यान था। महाराज वीरकृष्णमित्र राज्य करते थे। श्रीदेवी नामक [illegible] सुजात नाम का कुमार था। बलश्री प्रमुख 500 श्रेष्ठ राज-कन्याओं [illegible] का पाणिग्रहण-संस्कार हुआ। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी [illegible] श्रावक-धर्म स्वीकार किया। श्री गौतम स्वामी ने पूर्वभव की [illegible] भगवान् महावीर ने इस तरह पूर्वभव का वृत्तान्त कहा-

इषुकार नामक नगर था। वहाँ ऋषभदत्त गाथापति [illegible]

को निर्दोष आहार दान दिया, फलतः शुभ मनुष्य आयुष्य का बन्ध हुआ। आयु पूर्ण होने पर यहाँ सुजातकुमार के रूप में उत्पन्न हुआ यावत् महाविदेह क्षेत्र मे चारित्र ग्रहण कर सिद्ध पद को प्राप्त करेगा।

विवेचन- दूसरे अध्ययन की तरह तीसरे अध्ययन का भी सारा वर्णन प्रथम अध्ययन के ही समान है। केवल नाम व स्थान मात्र का भेद है। अतः सारा वर्णन सुबाहुकुमार की ही तरह समझ लेना चाहिए।

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥



चतुर्थ अध्ययन

सुवासवकुमार

1- चउत्थस्स उक्खेवो।

1- चतुर्थ अध्ययन की प्रस्तावना भी यथापूर्व समझ लेनी चाहिए।

2- विजयपुरे णयरे। णन्दणवणे उज्जाणे। असोगो जक्खो। वासवदत्ते राया। कण्हसिरीदेवी। सुवासवे कुमारे। भद्दापामोक्खाणं पंचसया जाव पुव्वभवपुच्छा कोसंबी णयरी। धणपालो राया। वेसमणभद्द अणगारे पडिलाभिए। इहं उववण्णे। जाव सिद्धे।

॥ सुहविवागस्स चउत्थं अज्झयणं समत्तं ॥

2- सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया- हे जम्बू! विजयपुर नाम का एक नगर था। वहाँ नन्दनवन नाम का उद्यान था। उस उद्यान मे अशोक नामक यक्ष का एक यक्षायतन था। विजयपुर नगर के राजा का नाम वासवदत्त था। उसकी कृष्णादेवी नाम की रानी था। सुवासवकुमार नामक राजकुमार था। भद्रा-प्रमुख पांच सौ राजाओं की श्रेष्ठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। सुवासवकुमार ने श्रावकधर्म स्वीकार किया। गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव का वृत्तान्त पूछा। उत्तर में श्री भगवान् ने फरमाया-

गौतम! कौशाम्बी नाम की नगरी थी। वहाँ धनपाल नामक राजा था। उसने वेश्रमणभद्र अनगार को निर्दोष आहार का दान दिया, उसके प्रभाव से मनुष्य-आयुष्य

का बन्ध हुआ, यावत् यहाँ सुवासवकुमार के रूप मे जन्म लिया है, यावत् इसी भव मे सिद्धि-गति को प्राप्त हुए।

विवेचन- प्रस्तुत अध्ययन मे भी चरित्रनायक के नाम, जन्मभूमि, उद्यान, माता-पिता, परिणीत स्त्रियों, पूर्वभव सम्बन्धी नाम, जन्मभूमि तथा प्रतिलाभित मुनिराज की विभिन्नता के नामों को छोडकर अवशिष्ट सारा कथा- विभाग सुबाहुकुमार की ही तरह समझ लेने का निर्देश किया है।

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त॥



पञ्चम अध्ययन

जिनदास

1- पंचमस्स उक्खेवो।

1- पञ्चम अध्ययन की प्रस्तावना भी यथापूर्व जान लेनी चाहिए।

2- सोगन्धिया णयरी। णीलासोगे उज्जाणे। सुकालो जक्खो। अप्पडिहय राया। सुकण्हा देवी। महचंदे कुमारे। तस्स अरहदत्ता भारिया। जिणदासो पुत्तो। तित्थयरागमणं। जिण दासो पुव्वभव पुच्छा। मज्झमिया णयरी। मेहरहे राया। सुधम्मे अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

॥ सुहविवागस्स पंचमं अज्झयणं समत्तं॥

2- हे जम्बू ! सौगन्धिका नाम की नगरी थी। वहाँ नीलाशोक नाम का उद्यान था। उसमे सुकाल नाम के यक्ष का यक्षायतन था। उक्त नगरी मे अप्रतिहत नामक राजा राज्य करते थे। सुकृष्णा नाम की उनकी भार्या थी। उनके पुत्र का नाम महाचन्द्रकुमार था। उसकी अर्हद्दत्ता नाम की भार्या थी। जिनदास नाम का पुत्र था। किसी समय श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ। जिनदास ने भगवान् से द्वादशविध गृहस्थ धर्म स्वीकार किया। श्री गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव की जिज्ञासा प्रकट की और भगवान् ने इसके उत्तर मे इस प्रकार फरमाया-

हे गौतम ! माध्यमिका नाम की नगरी थी। महाराजा मेघरथ वहाँ के राजा थे।

सुधर्मा अनगार को महाराजा मेघरथ ने भावपूर्वक निर्दोष आहार दान दिया, उससे मनुष्य भव के आयुष्य का बन्ध किया और यहाँ पर जन्म लेकर यावत् इसी जन्म में सिद्ध हुआ।

विवेचन- प्रस्तुत अध्ययन में जिनदास के जीवन-वृत्तान्त के संकलन मे यदि कोई विशेषता हो तो मात्र इतनी ही कि इसके पितामह श्री अप्रतिहत राजा और पितामही श्री सुकृष्णा देवी का भी इसमें उल्लेख है, जो प्रायः अन्य किसी अध्यायो के जीवन वृत्तो मे उपलब्ध नहीं है। शेष कथावस्तु सुबाहु कुमार के समान ही है। विशिष्टता है तो इतनी ही कि इसी भव में (इसी जन्म में) यह मोक्ष को प्राप्त हुआ।

॥ पञ्चम अध्ययन समाप्त ॥



षष्ठ अध्ययन

धनपति

1- छट्ठस्स उक्खेवो।

1- छट्ठे अध्याय की प्रस्तावना भी पूर्ववत् ही समझ लेनी चाहिए।

2- कणगपुरे णयरे। सेयासोए उज्जाणे। वीर भद्दो जक्खो। पियचंदे राया। सुभद्दा देवी। वेसमणे कुमारे जुवराया। सिरीदेवी पमोक्खाणं पंचसया तित्थयरागमणं। धणवई जुवरायपुत्ते जाव पुव्वभवपुच्छा। मणिवइया णयरी। मित्ते राया। संभूइविजए अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

॥ सुहविवागस्स छटठं अज्झयणं समत्तं ॥

2- हे जम्बू! कनकपुर नाम का नगर था। वहाँ श्वेताशोकनामक एक उद्यान था। वहाँ वीरभद्र नाम के यक्ष का यक्षायतन था। कनकपुर का राजा प्रियचंद्र था, उसकी रानी का नाम सुभद्रादेवी था। युवराज पदासीन पुत्र का नाम वैश्रमण कुमार था। उसका श्रीदेवी प्रमुख 500 श्रेष्ठ राजकन्याओ के साथ विवाह हुआ था। किसी समय तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी पधारे। युवराज के पुत्र धनपति कुमार ने भगवान् से श्रावकों के व्रत ग्रहण किए यावत् गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव की पृच्छा की। उत्तर मे भगवान् ने कहा-

धनपतिकुमार पूर्वभव मे मणिचयिका नगरी का राजा था। उसका नाम मित्र था।

उसने सभूतिविजय नामक अनगार को शुद्ध आहार से प्रतिलाभित किया यावत् इसी जन्म मे वह सिद्धिगति को प्राप्त हुआ।

विवेचन- प्रस्तुत अध्ययन मे धनपतिकुमार ने भी सुबाहुकुमार की ही तरह पूर्वभव में सुपात्र दान से मनुष्य आयुष्य का बन्ध किया। भगवान् महावीर स्वामी के पास क्रमश श्रावक धर्म व अन्त मे मुनि धर्म की दीक्षा लेकर कर्मबन्धनो को तोडकर मोक्ष प्राप्त किया।

इस भव व पूर्वभव में नामादि की भिन्नता के साथ-साथ सुबाहुकुमार व धनपति कुमार के जीवन मे इतना ही अन्तर है कि सुबाहुकुमार देवलोको मे जाता हुआ और मनुष्य-भव प्राप्त करता हुआ अन्त में महाविदेह क्षेत्र मे सिद्ध होगा जबकि धनपति कुमार इसी जन्म में निर्वाण को उपलब्ध हो गया।

॥ षष्ठ अध्ययन समाप्त ॥



सप्तम अध्ययन

महाबल

1- सत्तमस्स उक्खेवो।

1- सातवे अध्याय का उत्क्षेप पूर्ववत् ही समझ लेना चाहिए।

2- महापुरे णयरे। रत्तासोगे उज्जाणे। रत्तपाओ जक्खो। बले राया। सुभद्दा देवी। महबले कुमारे। रत्तवईपामोक्खाणं पंचसया तित्थयरागमणं जाव पुव्वभव पुच्छा। मणिपुरे णयरे। णागदत्ते गाहावई। इन्ददत्ते अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

॥ सुहविवागस्स सत्तमं अज्झयणं समत्तं ॥

2- हे जम्बू ! महापुर नामक नगर था। वहाँ रक्ताशोक नाम का उद्यान था। उसमे रक्तपाद यक्ष का यक्षायतन था। नगर मे महाराज बल का राज्य था। सुभद्रा देवी नाम की

उसकी रानी थी। महाबल नामक राजकुमार था। उसका रक्तवती प्रमुख 500 श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ विवाह किया गया।

उस समय तीर्थङ्कर भगवान् श्री महावीर स्वामी पधारे। तदनन्तर महाबल राजकुमार का भगवान् से श्रावकधर्म अङ्गीकार करना, गणधर देव का भगवान् से उसका पूर्वभव पूछना तथा भगवान् का प्रतिपादन करते हुए कहना-

गौतम ! मणिपुर नाम का नगर था। वहाँ नागदेव नाम का गाथापति रहता था। उसने इंद्रदत्त नाम के अनगार को पवित्र भावनाओं से निर्दोष आहार का दान देकर प्रतिलाभित किया तथा उसके प्रभाव से मनुष्य आयुष्य का बन्ध करके यहाँ पर महाबल के रूप में उत्पन्न हुआ। तदनन्तर उसने श्रमण दीक्षा स्वीकार कर यावत् सिद्धगति को प्राप्त किया।

॥ सप्तम अध्ययन समाप्त ॥



अष्टम अध्ययन

भद्रनन्दी

1- अट्ठमस्स उक्खेवो।

1- अष्टम अध्याय का उत्क्षेप पूर्व की भांति ही समझ लेना चाहिए।

2- सुघोसे णयरे। देवरमणे उज्जाणे। वीरसेणो जक्खो। अज्जुणो राया। रत्तवइ देवी। भद्दणंन्दी कुमारे। सिरिदेवी पामोक्खाणं पंचसया जाव पुव्वभवपुच्छा। महाघोसे णयरे। धम्मघोसे गाहावई। धम्मसीहे अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

॥ सुहविवागस्स अट्ठमं अज्झयणं समत्तं ॥

2- सुघोष नामक नगर था। वहाँ देवरमण नामक उद्यान था। उसमें वीरसेन नामक यक्ष का यक्षायतन था। सुघोष नगर में अर्जुन नामक राजा राज्य करता था। उसके रक्तवती नाम की रानी थी और भद्रनन्दी नाम का राजकुमार था। उसका श्रीदेवी आदि 500 श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ। किसी समय श्रमण भगवान् महावीर

स्वामी का वहां पदार्पण हुआ। भद्रनन्दी ने भगवान् की देशना से प्रभावित होकर श्रावकधर्म अङ्गीकार किया। श्री गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव के सम्बन्ध में पृच्छा की और भगवान् ने उत्तर देते हुए फरमाया-

हे गौतम ! महाघोष नगर था। वहाँ धर्मघोष नाम का गाथापति रहता था। उसने धर्मसिह नामक मुनिराज को निर्दोष आहार के दान से प्रतिलाभित कर मनुष्य-भव के आयुष्य का बन्ध किया और यहाँ पर उत्पन्न हुआ। यावत् साधुधर्म का यथाविधि अनुष्ठान करके श्री भद्रनन्दी अनगार ने बन्धे हुए कर्मो का आत्यतिक क्षय कर मोक्ष पद को प्राप्त किया।

विवेचन- सुबाहु कुमार और भद्रनन्दी के जीवन मे इतना ही अन्तर है कि सुबाहु कुमार देवलोक आदि अनेको भव कर के महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध होगे जबकि भद्रनन्दी इसी भव मे मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं।

॥ अष्टम अध्ययन समाप्त ॥



नवम अध्ययन

महाचंद्र

1- नवमस्स उक्खेवो।

1- नवम अध्ययन का उत्क्षेप यथापूर्व जान लेना चाहिए।

2- चम्पा णयरी। पुण्णभद्दे उज्जाणे। पुण्णभद्दो जक्खो। दत्ते राया। रत्तवई देवी। महचंदे कुमारे जुवराया। सिरीकन्ता पामोक्खाणं पंचसया जाव पुव्वभवपुच्छा। तिगिच्छिया णयरी। जियसत्तू राया। धम्मवीरिए अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

॥ सुहविवागस्स नवमं अज्झयणं समत्तं ॥

2- हे जम्बू ! चम्पा नाम की नगरी था। वहाँ पूर्णभद्र नामक सुंदर उद्यान था। उसमें पूर्णभद्र यक्ष का यक्षायतन था। वहाँ के राजा का नाम दत्त था और रानी का नाम रक्तवती

था। उनके युवराज पदासीन महाचंद्र नामक राजकुमार था। उसका श्रीकान्ता प्रमुख 500 श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ था।

एक दिन पूर्णभद्र उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ। महाचंद्र ने उनसे श्रावकों के बारह व्रतों को ग्रहण किया। गणधर देव श्री गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट की। भगवान् महावीर स्वामी ने उत्तर देते हुए फरमाया-

हे गौतम ! चिकित्सिका नाम की नगरी थी। महाराजा जितशत्रु वहाँ राज्य करते थे। उसने धर्मवीर्य अनगार को प्रासुक-निर्दोष आहार पानी का दान देकर प्रतिलाभित किया, फलतः मनुष्य-आयुष्य को बान्धकर यहाँ उत्पन्न हुआ। यावत् श्रामण्य-धर्म का यथाविधि अनुष्ठान करके महाचंद्र मुनि बन्धे हुए कर्मों का समूल क्षय कर परमपद को प्राप्त हुए।

इन सबके जीवन वृत्तान्तों में मात्र नामगत व स्थानगत भिन्नता के अतिरिक्त अर्थगत कोई भेद नहीं है।

॥ नवम अध्ययन समाप्त ॥



दशम अध्ययन

वरदत्त

1- जइ णं भंते ! दसमस्स उक्खेवो।

1- दशम अध्ययन की प्रस्तावना पूर्व की भांति ही जाननी चाहिए।

2- एवं खलु, जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं साइए णामं णयरे होत्था। उत्तरकुरू उज्जाणे। पासामिओ जक्खो। मित्तणंदी राया। सिरिकन्ता देवी। वरदत्ते कुमारे। वीरसेणा-पामोक्खाणं पंचदेवीसया तित्थयरागमणं। सावगधम्मं। पुव्वभवपुच्छा। सयदुवारे णयरे। विमलवाहणे राया। धम्मरुई अणगारे पडिलाभिए मणुस्साउए णिबद्धे। इह उववण्णे। सेसं जहा सुबाहुस्स चिन्ता जाव पवज्जा। कप्पंतरिए जाव सव्वट्ठसिद्धे। तओ महाविदेहे जहा दढपइण्णे जाव सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिणिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ।

'एवं खलु, जम्बू ! समणेणं भगवया महावीरेण जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं दसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।'

सेवं भन्ते ! सेवं भन्ते ! तिबेमि।

॥ सुहविवागस्स दसमं अज्झयणं समत्तं ॥

णमो सुहदेवयाए। विवागसुयस्स दो सुयखंधा दुहविवागे य सुहविवागे य। तत्थ दुहविवागे दस अज्झयणा एक्कसरगा दससु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति एवं सुहविवागे वि सेसं जहा आयारस्स ॥10 ॥

2- हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय में साकेत नाम का एक विख्यात नगर था। वहॉ उत्तरकुरु नाम का सुदर उद्यान था। उसमे पाशमृग नामक यक्ष का यक्षायतन था। उस नगर के राजा मित्रनन्दी थे। उनकी श्रीकान्ता नाम की रानी थी। (उनका) वरदत्त नाम का राजकुमार था। कुमार वरदत्त का वरसेना आदि 500 श्रेष्ठ राजकन्याओ के साथ पाणिग्रहण-संस्कार हुआ था। तदनन्तर किसी समय उत्तरकुरु उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ। वरदत्त ने देशना श्रवण कर भगवान् से श्रावकधर्म अङ्गीकार किया। गणधर श्री गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान् श्री महावीर ने वरदत्त के पूर्वभव का वृत्तान्त इस प्रकार फरमाया-

हे गौतम ! शतद्वार नाम का नगर था। उसमे विमलवाहन नामक राजा राज्य करता था। उसने एकदा धर्मरुचि अनगार को आते हुए देखकर उत्कट भक्तिभावो से निर्दोष आहार का दान कर प्रतिलाभित किया। उसके पुण्यप्रभाव से शुभ मनुष्य आयुष्य का वन्ध किया। वहॉ की भवस्थिति को पूर्ण करके इसी साकेत नगर मे महाराजा मित्रनन्दी की रानी श्रीकान्ता की कुक्षि से वरदत्त के रूप के उत्पन्न हुआ।

शेष वृत्तान्त सुबाहु कुमार की तरह ही समझ लेना चाहिए। अर्थात् भगवान् के विहार कर जाने के बाद पौषध-शाला मै पोषधोपवास करना, भगवान् के पास दीक्षित होने वालो को पुण्यशाली बतलाना और भगवान् के पुन पधारने पर दीक्षित होने का सकल्प करना। यह सब सुबाहु कुमार व वरदत्त कुमार दोनो के जीवन मे समान ही है। तदनन्तर दीक्षित होकर संयमव्रत का पालन करते हुए मनुष्य-भव से देवलोक और देवलोक से मनुष्यभव, देवलोको मे भी बीच-बीच के एक-एक देवलोक को छोडकर- सुबाहु के

समान ही गमनागमन करते हुए अन्त में सुबाहु कुमार की ही तरह महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर, वहाँ पर चारित्र की सम्यक् आराधना से कर्मरहित होकर मोक्षगमन भी समान ही समझना चाहिए।

वरदत्त कुमार का जीव देवलोक तथा मानवीय, अनेक भवों को धारण करता हुआ अन्त में सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न होगा, वहाँ से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न हो, दृढप्रतिज्ञ की तरह सिद्धगति को प्राप्त करेगा।

हे जम्बू ! इस प्रकार यावत् मोक्षसम्प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सुखविपाक के दशम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, ऐसा मैं कहता हूँ।

जम्बू स्वामी- भगवन् ! आपका सुखविपाक का कथन, जैसे कि आपने फरमाया है, वैसा ही है, वैसा ही है।

॥ दशम अध्ययन समाप्त ॥

अर्थ - श्रुत देवता को नमस्कार हो। विपाक सूत्र के दो श्रुत स्कन्ध है - एक दुख विपाक और दूसरा सुख विपाक। उनमें से दुख विपाक मे दस अध्ययन है और वे एक सरीखे हैं। इनका उपदेश दस दिनों में ही दिया जाता है। इसी प्रकार सुखविपाक भी जानना चाहिए। शेष सब आचारांग की तरह जानना चाहिए।

॥ सुखविपाक समाप्त ॥



1. दया का थोकड़ा

श्री गौतम स्वामी भगवान् से हाथ जोडकर प्रश्न पूछतेहै- हे भते ! साधु जी कितनी विस्वा दया पाले और श्रावकजी कितनी विस्वा दया पाले?

हे गौतम ! साधु जी 20 विस्वा दया पाले और श्रावक जी सवा विस्वा दया पाले (विस्वा एक भूमि का नाप है जो एक बीघा का बीसवा हिस्सा है। बीस विस्वा पूर्णता का वाचक है) अणगारों की अहिसा पूर्ण अहिंसा है अतएव उसे बीस विस्वा माना गया है। अणगार की बीस विस्वा दया के अनुपात में श्रावक की दया सवा विस्वा होती है।

अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

हे गौतम ! जीव के दो भेद- त्रस और स्थावर। श्रावक जी त्रस जीवो की विराधना नहीं करता किन्तु भूमि खोदे, कच्चा पानी पीवे, अग्नि का आरंभ समारंभ करे, खुले मुह बोलें, झटकन-फटकन करें कच्ची लीलोत्रा का उपयोग करे, इस प्रकार स्थावर जीवो की विराधना से नहीं बच सकता। जिससे उसकी दया दस विस्वा घट गई।

दस विस्वा (त्रस-जीव) के करे दो भेद- संकल्पजा और आरंभजा। श्रावक जी सकल्पजाहिसा नही करे किन्तु हाट करें, हवेली रखें, खेती बाडी करे, वेटा वेटी का परिणय करें, जिससे उसकी पॉच विस्वा दया घट गई।

पांच विस्वा (संकल्पजा हिंसा) के करें दो भेद- निरपराधी और सापराधी। श्रावक जी निरपराधी जीवो को नही मारे किन्तु श्रावकजी के ऊपर कुटुम्व का, देश का, राष्ट्र का भार रहता। श्रावक जी के घर कोई लम्पट पुरुष उसकी स्त्री से व्याभिचार सेवे तो सजा देवे, चोर-चोरी करे तो दण्ड देवे, जिससे ढाई विस्वा दया घट गई।

निरपराधी के करें दो भेद- निरपेक्ष और सापेक्ष। श्रावकजी नि
जीवो की दया पाले, किन्तु सापेक्ष की दया नही पाल सकता। का
घोडे को चाबुक से, हाथी को अंकुश से, बैल आदि को कामी
जानवरो के शरीर मे जीव पड जाए तो दवा आदि लगावे जिस
गई। सवा विस्वा ही शेष रह जाती है।

परिशिष्ट - यह परिगणना श्रावक के प्रथम अणुव्रत की अपेक्षा से है। श्रावक की यह 'सवा विस्वा दया' साधु की अपेक्षा से 16 वां भाग है। तदपि इसमें भी सजग एवं विवेकी व्रती श्रावक 18.75 विस्वा दया पाल सकता है।

श्रावक प्रथम व्रत से आगे बढकर जैसे-जैसे अपनी अहिंसा की परिधि को बढ़ाता जाता है वैसे-वैसे उसकी अहिंसा का क्षेत्र (दायरा) बढता जाता है और जब श्रावक 12 व्रत अंगीकार करता है तब उसकी अहिंसा 18.75 (पौने उन्नीस) विस्वा हो जाती है और सिर्फ सवा विस्वा हिंसा खुली रहती है। विशेष जानकारी के लिए देखिये- 'जिण धम्मो'- 'आचार्य श्री नानेश।'

तीन जागरणा का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक 12 वॉ, उद्देशा पहला)

अहो भगवन् ! जागरणा कितने प्रकार की है? हे गौतम ! जागरणा तीन प्रकार की हैं- **1. धर्म जागरणा, 2. अधर्म जागरणा, 3. सुदक्खु जागरणा।**

(1) धर्म जागरणा के 4 भेद

1. आचार धर्म 2. क्रिया धर्म, 3. दया धर्म, 4. स्वभाव धर्म।

(1) आचार धर्म- के मूल भेद 5, उत्तर भेद- 39

1. ज्ञानाचार, 2. दर्शनाचार, 3. चारित्राचार 4. तपाचार 5. वीर्याचार (ज्ञानाचार के 8, दर्शनाचार के 8, चारित्राचार के 9, तपाचार के 12, वीर्याचार के 3 भेद, ये सब मिलाकर 39 उत्तर भेद हुए)।

ज्ञानाचार के 8 भेद- 1.कालाचार- शास्त्र में जिस समय जो सूत्र पढने की आज्ञा है उस समय ही उसे पढना। **2. विनयाचार-** ज्ञानदाता गुरु का विनय करना। **3 बहुमानाचार-** ज्ञानी और गुरू के प्रति हृदय में भक्ति और श्रद्धा के भाव रखना। **4 उपधानाचार-** ज्ञान सीखते हुए यथाशक्ति तप करना। **5. अनिह्नवाचार-** ज्ञान पढ़ाने वाले गुरू का नाम नहीं छिपाना। **6. व्यंजनाचार-** सूत्र का शुद्ध उच्चारण करना। **7. अर्थाचार-** सूत्र का शुद्ध एवं सत्य अर्थ करना। **8. तदुभयाचार-** सूत्र का शुद्ध उच्चारण एवं शुद्ध अर्थ करें।

दर्शनाचार के 8 भेद - 1. निशंकिय- वीतराग सर्वज्ञ के वचनों में संदेह नहीं करना। **2. निकंखिय -** परदर्शन की वांछा नहीं करना। **3. निव्वितिगिच्छा -** धर्म के फल में संदेह नहीं करना। **4. अमूढदृष्टि-** पाखण्डियों (मिथ्यामत) का आडम्बर

देखकर उसमे मोहित न होना। **5. उववूह-** गुणी पुरुषो को देखकर उनके गुणो की प्रशसा करना तथा स्वयं भी उन गुणों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना। **6. थिरीकरणे-** धर्म से डिगते प्राणी को धर्म में स्थिर करें। **7. वच्छल-** अपने धर्म से एव स्वधर्मी बधुओ से वात्सल्य रखना। **8. प्रभावना-** कृष्ण वासुदेव और श्रेणिक राजा की तरह वीतराग प्ररूपित धर्म की उन्नति करना, प्रचार करना, दिपाना।

चारित्राचार के 8 भेद - 5 समिति, 3 गुप्ति।

तपाचार के 12 भेद- छः बाह्य तप और छ· आभ्यातर तप। ये 12 प्रकार के तप, इहलोक और परलोक के भौतिक सुख की वाछा रहित, मान सम्मान की भावना से रहित करें।

वीर्याचार के 3 भेद- 1. धर्म के कार्य मे बलवीर्य को छिपावे नही। 2. पूर्वोक्त 36 बोलों में उद्यम करे। 3. शक्ति अनुसार धर्म कार्य करे।

(2) क्रियाधर्म के 2 भेद- 1. करण सत्तरी **2.** चरण सत्तरी।

1. करणसत्तरी के 70 भेद- (जो कार्य, प्रयोजन होने पर किया जाए)। 4 प्रकार की पिण्ड विशुद्धि, 5 समिति, 12 भावना, 12 भिक्षु पडिमा, 5 इन्द्रियो का निरोध, 25 प्रकार की प्रतिलेखना, 3. गुप्ति, 4 अभिग्रह ये सब मिलाकर 70 भेद हुए।

2. चरणसत्तरी (जो हमेशा काम मे आता है) **के 70 भेद-** 5 महाव्रत, 10 यतिधर्म, 17 प्रकार का संयम, 10 प्रकार की वैयावच्च, 9 वाड ब्रह्मचर्य की 3 रत्न (ज्ञान, दर्शन, चारित्र), 12 प्रकार का तप, 4 कषाय का निग्रह ये सब मिलाकर 70 भेद हुए।

(3) दयाधर्म के 8 भेद- 1. स्वदया- अपनी आत्मा को पाप से बचाना। **2. परदया-** दूसरे जीवों की रक्षा करना। **3. द्रव्य दया-** देखादेखी, लज्जा से या कुलाचार से दया पालना। **4. भावदया-** ज्ञान से जीव को जीवात्मा जानकर उस पर अनुकपा लाकर बचाना (जीव की रक्षा करना)। **5. व्यवहारदया-** श्रावक के लिए जिस तरह दया पालना कहा है- उसी तरह दया पालना, घर का कार्य करते हुए यतना रखना। **6. निश्चयदया-** अपनी आत्मा को कर्मबधन से छुडाना। पुद्गल पर वस्तु है उस पर से ममता उतारकर उसका परिचय छोडकर आत्मगुण मे रमण करना। जीव का कर्मरहित शुद्ध स्वरूप प्रगट करना। यह निश्चय दया 14वे गुणस्थान के अत मे पूर्णरूप मे प्राप्त होती है। **7. स्वरूपदया-** किसी जीव को मारने के लिए उसको पहले अच्छी तरह खिलाने

है, सार संभाल करते हैं व उसके शरीर को पुष्ट करते हैं। यह ऊपर से दिखावा मात्र है, क्योंकि पीछे उसको मारने के परिणाम है। जैसे कि उ. सूत्र के सातवें अध्ययन में बकरे का दृष्टांत दिया गया है। **8. अनुबन्ध दया-** जीव को ऊपर से तकलीफ देवे किन्तु अंदर के परिणाम उसकी साता पहुँचाने के है। जैसे- माता पुत्र का रोग मिटाने के लिए उसे कडवी औषधि पिलाती है किन्तु अंदर में उसका भला चाहती है। जैसे पिता पुत्र को अच्छी शिक्षा देने के लिए ऊपर से ताडना तर्जना करता है मारता पीटता है किन्तु अन्दर में उसका भला चाहता है। जैसे डॉ. रोगी का आपरेशन करता है जो देखने मे भयकर है किन्तु अन्दर का परिणाम उसका रोग मिटाकर अच्छा करने का है।

(4) स्वभाव धर्म के दो भेद : (1) जीव स्वभाव धर्म (2) अजीव स्वभाव धर्म। जीव स्वभाव धर्म के दो भेद :- जीव स्वभाव से शुद्ध और कर्म के सयोग से अशुद्ध। जीव को विषय-कषाय के संयोग से विभाव परिणति होती है, वह जीव का अशुद्ध स्वभाव धर्म है और उस विभाव परिणति को दूर करके जीव अपने ज्ञानादि गुणो मे रमण करता है, वह जीव का शुद्ध स्वभाव धर्म है।

पुद्गल का एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श मे रहना पुद्गल का शुद्ध स्वभाव धर्म है। धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चारो के क्रमश चलनगुण, स्थिरगुण, अवगाहनागुण और वर्तनागुण ये इनके शुद्ध स्वभाव धर्म है। ये अपने-अपने स्वभाव को छोडते नहीं है।

इससे अधिक वर्ण आदि मे जाना पुद्गल का विभाव धर्म है। इस प्रकार धर्म जागरणा के ये चार भेद बताये गए है।

(2) अधर्म जागरणा- संसार में धन, कुटुम्व, परिवार का संयोग मिलाना, उनके लिए आरम्भादिक करना, धन की रक्षा करना, उसमें एकाग्रदृष्टि रखना, यह अधर्म जागरणा है।

(3) सुदक्खु जागरणा- 'सु' का मतलव है भली (अच्छी) दक्खु का मतलब है चतुराईवाली जागरणा। यह जागरणा श्रावक के होती है। क्योंकि श्रावक सम्यग् दर्शन सहित है। वह धन कुटुम्वादिक को तथा विपय कपाय को बुरा समझता है। इससे देशत निवृत्त होता है। उदयभाव से उदासीनपने संसार मे रहता है। तीन मनोरथ का चिन्तन करता है। इसे सुदक्खु जागरणा कहते हैं।



3. मोक्ष का मूल संयम

(भगवती सूत्र, शतक चौदहवां उद्देशा नौवां)

यहाँ आगमकारो ने तेय लेस्सं का प्रयोग किया है, इसका तात्पर्य है कि साधु का तेज संयम पर्याय के साथ बढता जाता है तथा यथायोग्य रूप से वह देवो के तेज (परिणाम धारा) काअतिक्रमण करता हुआ चला जाता है। गौतम स्वामी भ. से प्रश्न पूछते है, भगवन् जो ये श्रमण निर्ग्रन्थ आर्यत्वयक्त (पाप रहित) होकर विचरण करते है, वे किस की तेजोलेश्या (तेज सुख) का अतिक्रमण करते है ? हे गौतम !

1. एक मास की प्रव्रज्या वाला साधु वाणव्यंतर देवो के तेज का उल्लघन करता है अर्थात् 1 माह की प्रव्रज्या वाले मुनि का तेज वाण व्यंतर देवो से भी बढकर है।
2. 2 मास की का प्रव्रज्या वाला साधु नागकुमार आदि नव निकाय के देवो के तेज का उल्लंघन कर जाता है।
3. 3 मास की --,,-- असुर कुमार देवों के तेज का उल्लंघन कर जाता है।
4. 4 मास की--,,--ग्रह नक्षत्र तारा इन ज्योतिषी देवो के सुखो का उल्लघन कर जाता है।
5. 5 मास की --,,--चन्द्रमा सूर्य देवो के तेज का उल्लघन कर जाता है।
6. 6 मास की --,,--1-2 देवलोक के देवो के तेज का उल्लघन कर जाता है।
7. 7 मास की --,,-- 3-4 देवलोक के देवों के तेज का उल्लघन कर जाता है।
8. 8 मास की--,,--5-6 देवलोक के देवो के तेज का उल्लघन कर जाता है।
9. 9 मास की--,,--7-8 देवलोक के देवो के तेज का उल्लघन कर जाता है।
10. 10 मास की --,,-- 9-10-11-12 देवलोक के देवो के तेज का उल्लघन कर जाता है।
11. 11 मास की--,,--नव ग्रैवेयक देवलोक के देवो के तेज का उल्लघन कर जाता है।
12. 12 मास की --,,---पॉच अनुत्तर देवलोक के देवो के तेज का उल्लघन कर जाता है।
13. इसके बाद अधिकाधिक शुद्ध (शुद्ध और शुद्धतर) परिणाम वाला होकर सिद्ध होता है, यावत् सब दु खो का अत करता है।



4. श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ

श्रावक सम्यक्त्व पूर्वक बारह व्रत धारण करता है किन्तु वह इतना करके ही नहीं रुक जाता है। वह इन व्रतों को निरतिचार पालन करने के लिए विशेष रूप से अनुशीलन करने के लिए और उनमें ठोस दृढता लाने के लिए विशेष प्रकार की प्रतिज्ञाएँ लेता है। शास्त्र में इस प्रकार की विशेष प्रतिज्ञाओं को प्रतिमा (पडिमा) कहा गया है। शास्त्रकारो ने श्रावक की ग्यारह पडिमाओं का निरूपण किया है। उनके नाम और स्वरूप इस प्रकार है:-

1. दर्शन प्रतिमा, 2. व्रत प्रतिमा, 3. सामायिक प्रतिमा, 4. पौषधोपवास प्रतिमा, 5. कायोत्सर्ग प्रतिमा, 6. ब्रह्मचर्य प्रतिमा, 7. सचित्त त्याग प्रतिमा, 8. आरंभ त्याग प्रतिमा, 9. प्रेष्य- त्याग प्रतिमा, 10. अनुमति-उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा और 11. श्रमणभूत प्रतिमा।

1. दर्शन प्रतिमा :- वैसे तो सम्यक्दर्शन होने के पश्चात् ही वास्तविक श्रावकत्व आता है, अत. बारह व्रत धारण कर लेने से सम्यग्दर्शन का स्वयमेव उसमें अन्तर्भाव हो जाता है। ऐसी स्थिति में पुन. दर्शन प्रतिमा स्वीकार करने का क्या प्रयोजन है? इसका समाधान यह है कि व्रत ग्रहण से पूर्व जो सत्य तत्वाभिरुचिरूप दर्शन होता है, उसमें अतिचारो के लगने की संभावना रहती है। सम्यक्दर्शन और व्रत ग्रहण के पश्चात् भी दर्शन में मलिनता रह सकती है। अतएव उसका निराकरण करने के लिए और पूर्वगृहीत सम्यक् तत्त्व का शंका-कांक्षा आदि अतिचारों से सर्वथा दूर रहकर शुद्ध रीति से पालन करने के लिए दर्शन-प्रतिमा स्वीकार की जाती है। इस प्रतिमा का समय एक मास है। एक मास पर्यन्त दर्शन में किसी प्रकार की मलिनता न आने देना और दर्शन को विशिष्ट दृढ़ता पर पहुँचा देना इस प्रतिमा का प्रयोजन है।

2. व्रत प्रतिमा .- दर्शन की परिपूर्णता- दृढ़ता हो जाने के पश्चात् व्रतों को [illegible] करना होता है, अत पूर्व स्वीकृत व्रतो को विशेष दृढ करने के लिए यह प्रतिमा अंगीकार की जाती है। इसमें अणुव्रत, गुणव्रत आदि व्रतों का निर्मल-निरतिचार रूप से पालन किया जाता है, परन्तु सामायिक व्रत और देशावकाशिक व्रत का पालन पहले [illegible] नहीं किया जाता है अर्थात् इन दो व्रतों को छोड़ कर शेष व्रतों का अतिचार [illegible]

रीति से पालन किया जाता है। इस प्रतिमा का समय दो मास का है।

3. सामायिक प्रतिमा :- इस प्रतिमा में सामायिक और देशावकाशिक व्रत का भी निरतिचार विशुद्ध रीति से दृढता पूर्वक पालन किया जाता है परन्तु पर्व तिथियो पर किये जाने वाले पौषध व्रत का निरतिचार पालन करने मे शिथिलता रह जाती है। इस प्रतिमा मे पौषध व्रत को छोडकर शेष व्रतो का निरतिचार पालन और आराधन किया जाता है। इस प्रतिमा का समय तीन मास का है।

4. पौषधोपवास प्रतिमा - इस प्रतिमा मे पौषधव्रत का भी निरतिचार पालन व आराधन किया जाता है। अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या को उपवास युक्त पौषध व्रत की निर्मल आराधना करना इसका प्रयोजन है। इसकी अवधि चार मास की है।

5. कायोत्सर्ग प्रतिमा - इस प्रतिमा मे पौषध की सारी रात्रि कायोत्सर्ग अवस्था मे व्यतीत की जाती है। इस प्रतिमा को धारण करने वाला उपासक सर्व स्नान का त्याग कर देता है, रात्रि भोजन का त्याग कर देता है, धोती की लांग खुली रखता है, दिन मे ब्रह्मचारी रहता है, रात्रि मे ब्रह्मचर्य की मर्यादा करता है। पॉच मास पर्यन्त इस तरह की आराधना की जाती है।

6. ब्रह्मचर्य प्रतिमा - इस प्रतिमा मे पूर्णतया ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। शेप सब आचार-विधि पॉचवी प्रतिमा के समान है। इसकी अवधि छह मास की है।

7. सचित्त त्याग - इस प्रतिमा में उपासक सचित्त आहार का त्याग कर देता है। उसकी अवधि सात मास की है।

8. आरम्भ त्याग - इस प्रतिमा मे उपासक आरंभ का त्याग कर देता है। वह स्वय किसी प्रकार का आरंभ (हिसा) नही करता। इसकी अवधि आठ मास की है।

9. प्रेष्य त्याग .- इस प्रतिमा मे उपासक दूसरो के द्वारा आरभ कराने का त्याग कर देता है। वह नौकर-चाकर आदि के द्वारा भी आरम्भ का कोई काम नहीं करवाता है। इसका समय नौ मास का है।

10. अनुमति-उद्दिष्ट त्याग .- इस प्रतिमा मे उपासक अपने उद्देश्य से तैयार किये हुए आहारादि का भी त्याग कर देता है। वह क्षुर मुण्डन करता है और शिखाधारण

करता है। इस प्रतिमा को धारण किये हुए उपासक को यदि उसके सम्बन्धीजन पूछे कि जमीन आदि मे स्वर्णादि द्रव्य रखा हुआ, आप जानते हैं? यदि वह जानता हो तो "मैं जानता हूँ" और यदि नहीं जानता हो तो "नहीं जानता हूँ" इतना कहना मात्र कल्पता है। इसके अतिरिक्त उसको अधिक गृहकृत्य करना नहीं कल्पता है। यदि वह इतना भी न करे तो कुटुम्बियो की वृत्ति का छेद हो जाय। अतः इतना गृहकृत्य उसके लिए खुला है। इसकी अवधि दस मास की है.

11. श्रमणभूत प्रतिमा - आगमों में ग्यारहवीं श्रमण भूत प्रतिमा के धारक श्रावक को भिक्षा गमन की अनुमति दी गई है। इसके अलावा अन्य किसी भी श्रावक को चाहे वह दया में हो या संवर मे, भिक्षा करने की अनुमति आगमकारों ने नही दी है। इस प्रतिमा में श्रावक साधु के समान हो जाता है। वह मस्तक के बालो का मुण्डन करवा लेता है या लोच करता है, वह साधु का आचार और भण्डोपकरण ग्रहण कर साधु के वेष में श्रमण-निर्ग्रन्थो के लिए प्रतिपादित धर्म को सम्यक् रूप से काय से स्पर्श करता हुआ-पालन करता हुआ विचरता है। वह चलते समय युग मात्र प्रमाण भूमि को देखता हुआ यतनापूर्वक गमन करता है। घरो मे भी भिक्षावृत्ति के लिए जाता है। भिक्षावृत्ति के लिए जाते हुए यदि कोई उससे पूछे कि "हे आयुष्मन्! तुम कौन हो? तब उसे कहना चाहिए कि "मै प्रतिमा- प्रतिपन्न श्रमणोपासक हूँ।" इस प्रतिमा की अवधि ग्यारह मास की है। इस प्रतिमा में श्रावक लगभग साधु की कोटि मे पहुँच जाता है।

पॉचवीं प्रतिमा से लेकर 11 वीं प्रतिमा तक की जघन्य काल अवधि एक, दो तीन दिन की कही गई है। उत्कृष्ट अवधि प्रत्येक प्रतिमा के साथ बताई गई है। यदि इन पडिमाओ का धारी श्रावक वर्द्धमान परिणाम के कारण दीक्षित हो जाय या आयु पूर्ण कर ले तो जघन्य या मध्यम काल की उसकी अवधि समझनी चाहिए। यदि दोनों मे से कुछ भी न हो तो प्रतिमा का काल उत्कृष्ट समझना चाहिए।

सब प्रतिमाओं का समय कुल मिलाकर साढ़े पाँच वर्ष (66 मास) होता है।

उक्त रीति से शास्त्रो मे श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का निरूपण किया गया है। इन प्रतिमाओं की यथाविधि आराधना करने वाला उत्कृष्ट श्रावक कहा जाता है। श्रावकत्व की यह उत्कृष्ट स्थिति है। उसमें श्रावकत्व की परिपूर्ण आराधना है।



गुणस्थान स्वरूप

गुणस्थानों* पर उन्नतीस द्वार हैं। वे इस प्रकार हैं- 1. नामद्वार 2. लक्षणद्वार 3. स्थितिद्वार 4. क्रियाद्वार 5. सत्ताद्वार, 6. बंधद्वार 7. उदयद्वार 8. उदीरणाद्वार 9. निर्जराद्वार 10. भावद्वार 11. कारणद्वार 12. परीषहद्वार 13. आत्माद्वार 14. जीव के भेदद्वार 15. गुणस्थानद्वार 16. योगद्वार 17. उपयोगद्वार 18. लेश्याद्वार 19. हेतुद्वार 20. मार्गणाद्वार 21. ध्यानद्वार 22. दण्डकद्वार 23. जीव-योनिद्वार 24. निमित्तद्वार 25. चारित्रद्वार 26. आकर्षद्वार 27. समकितद्वार 28. अन्तरद्वार और 29. अल्पबहुत्वद्वार।

* आत्मा के ज्ञान-दर्शन चारित्र आदि गुणो की शुद्धि-अशुद्धि और उत्कर्ष- अपकर्ष अवस्था के वर्गीकरण को गुणस्थान कहते है।

1. नाम द्वार

गुणस्थानो के नाम- 1. मिथ्यात्व 2. सास्वादन 3. सम्यग् - मिथ्या (मिश्र) 4 अविरत सम्यग्दृष्टि 5. देशविरत 6. प्रमत्त-संयत 7. अप्रमत्त सयत 8 निवृत्ति-बादर 9 अनिवृत्ति-बादर 10. सूक्ष्म-सम्पराय 11. उपशान्त मोहनीय 12 क्षीण मोहनीय 13 सयोगी केवली और 14. अयोगी केवली, गुणस्थान।

2. लक्षण द्वार

1. मित्यात्व गुणस्थान का लक्षण-जिनेश्वर भगवान् की वाणी न्यूनाधिक या विपरीत श्रद्धे या प्ररूपे जिन-मार्ग पर दुष्ट परिणाम रखे, हिसा मे धर्म माने या प्ररूपे, कुगुरु, कुदेव और कुशास्त्र पर आस्था रखे अथवा तत्व श्रद्धा का अभाव। जीव के ऐसे भाव को पहला 'मिथ्यात्व गुणस्थान' कहते है।

पहले गुणस्थान का फल- कर्म रूपी डडे से आत्मा रूपी गेद चार गति चौवीस दण्डक और चौरासी लाख जीव-योनियो मे बारम्बार परिभ्रमण कर दु ख भोगती रहती है।

2. दूसरे गुणस्थान का लक्षण- जो औपशमिक सम्यक्त्वी जीव अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से सम्यक्त्व को छोडकर मिथ्यात्व की ओर झुक रहा है, किन्तु अभी तक मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं किया है, उसकी इस अवस्था विशेष को सास्वादन गुणस्थान कहते है। जैसे किसी ने खीर का भोजन किया और बाद मे वमन कर दिया तो उसे कुछ

गुड़चटा का स्वाद रहता है। अथवा जैसे घंटे से गंभीर शब्द निकल चुकने के बाद उसका रणकार (प्रतिध्वनि) रह जाती है, उसके समान, अथवा आत्मा रूपी आम्र वृक्ष के परिणाम रूपी डाली से मोह रूपी वायु चलने से समकित रूपी फल टूट गया, परन्तु पृथ्वी पर नहीं पहुंचा यह बीच ही में है तब तक के परिणाम को "सास्वादन गुणस्थान" कहते हैं।

3. तीसरे गुणस्थान का लक्षण-सम्यक्त्व और मिथ्यात्व से मिश्रित श्रीखंड के समान मीठे और खट्टे स्वाद जैसा नालिकेल द्वीप के मनुष्य का दृष्टांत- जिस द्वीप में खाने के लिए सिर्फ नारियल ही होते है, उसे नालिकेल द्वीप कहते हैं। वहां मनुष्यों ने न अन्न को देखा है और न ही उसके विषय में कुछ सुना है। अतएव उनको अन्न मे रूचि नही होती और न ही द्वेष ही होता है। इस प्रकार मोहनीय कर्म का उदय रहता है तब जीव को जैन धर्म में प्रीति नहीं होती और अप्रीति भी नही होती अर्थात् श्री वीतराग ने जो जैन धर्म में कहा है वही सच्चा है, इस प्रकार एकान्त श्रद्धा रूप प्रेम भी नहीं होता हे और वह धर्म झूठा है, अविश्वसनीय है, इस प्रकार अरूचि रूप द्वेष भी नही होता।

4. चौथे गुणस्थान का लक्षण- सात प्रकृतियो का क्षयोपशम आदि करने पर जीव की जो अवस्था होती है उसे चौथा "अविरत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थान" कहते हैं। वे सात प्रकृतियों यें है- 1. अनन्तानुबन्धी क्रोध 2. मान- 3. माया, 4- लोभ 5 समकित मोहनीय 6. मिश्र मोहनीय 7. मिथ्यात्व मोहनीय कुगुरु, कुदेव, कुधर्म, कुशास्त्र पर आस्था रखना-"मिथ्यात्व मोहनीय" है। सभी देव, सभी गुरु, सभी धर्म और सभी शास्त्रों को समान समझने को मिश्र मोहनीय कहते हैं। जिसका उदय तात्विक रुचि का निमित्त होकर भी औपशमिक या क्षायिक भाववाली तत्व रूचि का प्रतिबंध करता है। सम्यकत्व का घात करने मे असमर्थ मिथ्यात्व के शुद्ध दलिकों को सम्यकत्व मोहनीय कहते हैं।

चौथे गुणस्थान में आया हुआ जीव जीवादिक नौ पदार्थो का जानकार होता है द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव का जानकार होवे, नवकारसी आदि से लेकर वर्षीतप को उपादेय जाने, श्रद्धा करे, प्ररूपणा करे परन्तु पालन नहीं कर सकता क्योंकि "अविरत सम्यग्दृष्टि" है।

* अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से एक देश संयम भी पालन नहीं कर सकता।

5. देशविरति गुणस्थान का लक्षण – प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय के कारण जो जीव पापजनक क्रियाओं से सर्वथा तो नहीं किन्तु अप्रत्याख्यानावरण [illegible] का उदय न होने के कारण देश (अंश) से पापजनक क्रियाओं से अलग हो सकते हैं, वे देशविरत कहलाते हैं। देशविरत को श्रावक भी कहते हैं। इनका स्वरूप विशेष देशविरत गुणस्थान है। इस गुणस्थान में आया हुआ जीव, जीव अजीव नौ पदार्थों का ज्ञाता होता है। नवकारसी आदि से लेकर वर्षीतप आदि जानता है श्रद्धान करता है, प्ररूपणा करता है और शक्ति के अनुसार प्रत्याख्यान करता है। एक प्रत्याख्यान से लेकर [illegible] वारह व्रत, ग्यारह प्रतिमाएँ तक पालन करे यावत् संलेखना तक अनशन करे

6. प्रमत्तसंयत गुणस्थान – जो जीव पापजनक व्यापारो से विधिपूर्वक सर्वथा निवृत्त हो जाते हैं वे संयत (मुनि) है। लेकिन संयत भी जब तक प्रमाद का सेवन करते हैं तव तक वे प्रमत्त संयत कहलाते हैं, और उनके स्वरूप-विशेष को प्रमत्त संयत गुणस्थान कहते हैं।

सकल संयम को रोकने वाली प्रत्याख्यानावरण कषाय का अभाव होने से इस गुणस्थान मे पूर्ण संयम तो हो चुकता है किन्तु संज्वलन आदि कषायो के उदय से संयम मे मल उत्पन्न करने वाले प्रमाद के रहने से इसे 'प्रमत्त-सयत' कहते है।

7. अप्रत्तसंयत गुणस्थान – जो सयत (मुनि) विकथा, कषाय आदि प्रमादो को नहीं सेवते हैं, वे अप्रमत्त संयत है और उनका स्वरूप विशेष जो ज्ञानादि गुणो की शुद्धि और अशुद्धि के तरतमभाव से होता है, अप्रमत्तसयत गुणस्थान कहलाता है अर्थात संज्वलन और नोकषायो का मन्द उदय होता है ओर जिसके व्यक्त प्रमाद नष्ट हो गये है और ज्ञान, ध्यान, तप मे लीन सकल संयम संयुक्त सयत (मुनि) को 'अप्रमत्त [illegible]' कहते है।

8. निवृत्ति बादर गुणस्थान – निवृत्ति अर्थात् [illegible] भिन्न जिस गुणस्थान में आए हुए सम समय के त्रिकालवर्ती सभी जीवों [illegible] भिन्न-भिन्न होते है। इस गुणस्थान को अपूर्वकरण गुणस्थान भी कहते

9. अनिवृत्ति बादर गुणस्थान – अ - नहीं, निवृत्ति भेद [illegible] भिन्न अर्थात् जिस गुणस्थान मे समसमयवर्ती त्रिकालवर्ती [illegible]

हो, चाहे उतरते परिणाम हो उस-उस समय के परिणामो मे भिन्नता नहीं होती उस अवस्था को अनिवृत्ति बादर गुणस्थान कहते है।

10. सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान - इस गुणस्थान में सम्पराय अर्थात् (लोभ) कषाय के सूक्ष्म खण्डो का ही उदय होने से इसका सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान ऐसा सार्थक नाम प्रसिद्ध है। जिस प्रकार धुले हुए गुलाबी रंग के कपडे मे लालिमा (सुर्खी) सूक्ष्म-झीनी-सी रह जाती है, उसी प्रकार इस गुणस्थानवर्ती जीव संज्वलन लोभ के सूक्ष्म खण्डो का वेदन करता है। इसलिए इसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान कहते हैं।

11 उपशांत कषाय वीतराग छदमृस्थ गुणस्थान - जिसके कषाय उपशांत हुए हैं, राग का भी सर्वथा उदय नहीं है और जिनको छदम् (आवरणभूतघातिकर्म) लगे हुए हैं, वे जीव उपशांत कषाय वीतराग छदमृस्थ है और उनके स्वरूप विशेष को उपशांत कषाय वीतराग छदमृस्थ गुणस्थान कहते हैं।

शरद ऋतु मे होने वाले सरोवर के जल की तरह मोहनीय कर्म के उपशम से उत्पन्न होने वाले निर्मल परिणाम इस गुणस्थान वाले जीव के होते है। आशय यह है कि मोहनीय कर्म की सत्ता तो है परन्तु उदय नहीं होता है।

12. क्षीणकपाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान - मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय होने के पश्चात् ही यह गुणस्थान प्राप्त होता है। इस गुणस्थानवर्ती जीव के भाव स्फटिक मणि के निर्मल पात्र में रखे हुए जल के समान निर्मल होते है। क्योंकि मोहनीय कर्म सर्वथा क्षय हो जाते है। सत्ता भी नहीं रहती है। जो मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय कर चुके है, किन्तु शेष छद्म (घातिकर्म का आवरण) अभी विद्यमान है, उनको क्षीण कषाय वीतराग कहते हैं। और उनके स्वरूप विशेष को क्षीण कषाय वीतराग कहते है।

13. सयोगिकेवली गुणस्थान - जो चार घातिकर्म (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय) का क्षय करके केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त कर चुके हैं। जो पदार्थ के जानने-देखने में इन्द्रिय, आलोक आदि की अपेक्षा नहीं रखते है और योग (आत्मवीर्य, शक्ति, उत्साह, पराक्रम) से सहित है, उन्हें सयोगिकेवली कहते है और उनके स्वरूप विशेष को सयोगी केवली गुणस्थान कहते है। सयोगिकेवली को [illegible] से रहित होने के कारण जिन, जिनेन्द्र, जिनेश्वर भी कहा जाता है।

14. अयोगी केवली गुणस्थान - जो केवली भगवान योगो से रहित है वे अयोगी केवली कहलाते है, अर्थात् जब सयोगी केवली मन, वचन और काया के योगो का निरोध कर योग रहित शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लेते है तब वे अयोगी केवली कहलाते है, और उनके स्वरूप विशेष को अयोगी केवली गुणस्थान कहते है। इस गुण में 5 लघु अक्षर (अ, इ, उ, ऋ, लृ) के उच्चारण जितनी स्थिति तक रहकर-1 वेदनीय 2. आयुष्य, 3 नाम और 4 गौत्र- इन चार अघातीय कर्म का क्षय करके अफुसमाण (दूसरे समय का स्पर्श न करना) गति से, एक समय की अविग्रह (बिना मोडवाली) गति से औदारिक तैजस् और कार्मण शरीर को छोडकर सिद्ध गति को प्राप्त होते है। सिद्ध गति मे जन्म नहीं, मरण नही, जरा नही, रोग नही, शोक नही, दु ख नहीं, दारिद्रय नहीं, मोह नहीं, माया नही, कर्म नही, काया नही, चाकर नहीं, ठाकर नही, गुरु नही, चेला नहीं, भूख नहीं, प्यास नही, ज्योति में ज्योति विराजमान है। अनत सुखो मे लीन, अनत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत क्षायिक चारित्र, निराबाध, अक्षय स्थिति, अमूर्ति, अगुरू-लघु, अनतवीर्य सहित विराजमान होते है।

3. स्थिति द्वार*

पहले गुणस्थान के तीन भंग हैं- 1. अनादि- अपर्यवसित (अभवि जीव की उपेक्षा) जिसकी आदि नही और अन्त भी नही, 2 अनादि सपर्यवसित (भवि जीव की उपेक्षा) जिसकी आदि नही, किन्तु अन्त है, 3. सादि सपर्यवसित जिसकी आदि भी है और अन्त भी है। प्रतिपाती सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा तीसरे भग की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल की है।

* आत्मा के साथ कर्मों का लगे रहने का काल।

दूसरे गुणस्थान की स्थिति ज एक समय उ. छह आवलिका की है।

तीसरे और बारहवे गुणस्थान की स्थिति ज उ. अन्तर्मुहूर्त की है।

चौथे गुणस्थान की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त और उ तैतीस ** सागर झाझेरी की है।

पाचवे और तेरहवे गुणस्थान की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त और उ. देशोन क्रोड पूर्व की है।

** पच सग्रह भाग एक पृष्ठ 152 से चौथे गुणस्थान की स्थिति साधिक 33 सागरोपम [illegible] है, आगमो मे इसका विरोध न होने से इसे ही प्रमाण स्वरूप माना गया है। सम्यग्दृष्टि का [illegible] 66 सागरोपम का है पर उसमे गुणस्थान बदलते रहते हैं।

छठे गुणस्थान की जघन्य स्थिति एक समय की उ. देशोन क्रोड पूर्व की है।

सातवें, आठवें, नौवे, दसवें और ग्यारहवे गुणस्थान की स्थिति ज. एक समय उ. अन्तर्मुहूर्त की है।

चौदहवे गुणस्थान की स्थिति मध्य रीति से पांच लघु अक्षर के उच्चारण करने में जितना काल लगे, उतनी है।

4. क्रिया द्वार*

(आगमो में एक साथ 25 क्रियाओं के रूप मे उल्लेख उपलब्ध नहीं है। ठाणांग सूत्र के पाचवे ठाणे मे पांच-पांच क्रियाओ के रूप में अलग-अलग वर्णन मिलता है अत क्रिया द्वार मे 25 क्रिया का उल्लेख न कर आरम्भियादि 5 क्रियाओं के अनुसार उल्लेख किया जा रहा है। प्रज्ञापना सूत्र के 22 वे क्रिया पद के अनुसार कोनसी क्रिया कौन से गुणस्थान में है इसका उल्लेख किया जा रहा है।)

पांच क्रियाओं के नाम - 1. आरम्भिया 2. परिग्गहिया 3. मायावत्तिया, 4 मिच्छादंसणवत्तिया, 5. अपच्चक्खाणवत्तिया। (अविरति)

पहले दूसरे* तीसरे गुणस्थान मे पांचो क्रियाएं पाई जाती हैं। चौथे मे मिथ्यात्व को छोडकर चार क्रियाएं पाई जाती हैं। पांचवे मे अविरति को छोडकर तीन क्रियाए है। छठे मे आरम्भिया और मायावत्तिया- ये दो क्रियाएं हैं। सातवे, आठवें, नौवें और दसवें गु. मे एक मायावत्तिया क्रिया पाई जाती है। ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवे और चौदहवें गुणस्थान मे इस पांच मे से एक भी क्रिया नहीं है।

* [illegible] गुणस्थान में अनन्तानुबंधी कषाय का उदय होने से मिथ्यात्व की क्रिया [illegible]

5. सत्ता द्वार*

पहले गुणस्थान से ग्यारहवें गु. तक आठों ही कर्मों की सत्ता है। बारहवें गुणस्थान में सात* कर्मों की सत्ता है और तेरहवें तथा चौदहवें गु. में चार अघातिया कर्मों की सत्ता [illegible] है।

* [illegible]

* [illegible]

6. बन्ध द्वार*

तीसरे गुणस्थान को छोडकर पहले से सातवे गु. तक सात तथा आठ कर्मो का वंध होता है (जब सात कर्मो का बन्ध होता है तथा आयु-कर्म नहीं बधता)। तीसरे, आठवे और नौवे गुणस्थान में आयु-कर्म के सिवाय सात कर्मो का बध होता है। दसवे गुणस्थान मे मोहनीय और आयु के सिवाय छह कर्मो का बन्ध होता है। ग्यारहवे, बारहवे और तेरहवे गुणस्थान मे एक सातावेदनीय का ही बन्ध होता है। चौदहवे गुणस्थान मे बन्ध नहीं होता है।

* आत्मा के साथ कर्मो का क्षीर-नीर के समान एकमेव हो जाना।

7. उदय द्वार*

पहले गुणस्थान से दसवे गुणस्थान तक आठो कर्मो का उदय होता है। ग्यारहवे तथा बारहवे गुणस्थान मे मोहनीय कर्म के सिवाय सात कर्मो का उदय होता है। तेरहवे तथा चौदहवे गु. मे चार अघातिया कर्मो का उदय होता है।

* स्थिति पूर्ण करके कर्म का फल देना उदय कहलाता है।

8. उदीरणा द्वार*

पहले से लेकर छठे गुणस्थान तक तीसरे गुण. को छोडकर सात-आठ कर्मो की उदीरणा होती है (सात की उदीरणा हो तो आयु कर्म की नहीं होती तीसरे मे आठ कर्मो की उदीरणा) सातवे, आठवे और नौवे गुणस्थान मे छह कर्मो की उदीरणा (आयु और वेदनीय छोडकर) दसवे गुणस्थान मे छह या पाच कर्मो की उदीरणा (छह की हो तो पूर्वोक्त दो छोडना और पांच की हो तो मोहनीय भी छोड देना)। ग्यारहे गु मे पाच कर्मो की उदीरणा, बारहवे गु. मे पूर्वोक्त पाच कर्मो की या नाम ओर गोत्र- इन दो कर्मो की उदीरणा होती है। तेरहवे गु. मे पूर्वोक्त दो की उदीरणा होती है या किसी की नहीं होती। चौदहवे गुणस्थान मे उदीरणा नही होती।

* कर्मो की स्थिति पूर्ण होने से पहले ही तपस्या, लोच आदि के द्वारा उन कर्म को उदय मे [illegible] है।

9. निर्जरा द्वार*

पहले गुणस्थान से दसवे गु. तक आठो कर्मो की निर्जरा होती है। ग्यारह

हैं। दूसरे, चौथे और पांचवें गु. में चारित्र आत्मा के सिवाय सात आत्माएं होती हैं। [illegible] गु. से लेकर दसवें गु. तक आठों आत्माएं होती हैं। ग्यारहवे से तेरहवें गु. तक कषाय आत्मा के सिवाय सात आत्माएं होती हैं। चौदहवें गु. में कपाय आत्मा और योग आत्मा के सिवाय छह आत्माएं होती हैं। सिद्ध भगवान् में द्रव्य आत्मा, उपयोग आत्मा, ज्ञान आत्मा एवं दर्शन आत्मा- ये 4 आत्माएं होती हैं।

14. जीव भेद द्वार

पहले गु. मे जीव के चौदह भेद पाए जाते हैं। दूसरे गु. में जीव के छः भेद पाए जाते हैं दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यच पंचेन्द्रिय इनका अपर्याप्त, संज्ञी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त और अपर्याप्त। तीसरे गु. में जीव का एक ही भेद पाया जाता है - संज्ञी का पर्याप्त। चौथे गु. मे संज्ञी का पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो भेद पाए जाते हैं। पांचवे से लेकर चौदहवे गुणस्थान तव जीव का एक ही भेद संज्ञी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त पाया जाता है।

15. गुणस्थान द्वार

प्रत्येक गुणस्थान अपने-अपने गुण से संयुक्त होता है। पहले गु. से चौथे गु. तक आठ बोल पाये जाते हैं। 1. असंयत 2. अप्रत्याख्यानी 3. अविरत 4. असुप्त 5. अपण्डित 6. अजाग्रत 7. अधर्मी, 8. अधर्मव्यवसायी। पाचवें गु. में आठ बोल पाये जाते है- 1. सयतासंयत 2. प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी 3. व्रताव्रती 4. [illegible] 5. बालपण्डित 6. सुप्त-जाग्रत 7. धर्माधर्मी 8. धर्मा-धर्मव्यवसायी। छठे गुणस्थान से चौदवें गु. तक आठ बोल पाये जाते हैं- 1. संयती 2. प्रत्याख्यानी 3. विरत 4. [illegible] 5. पण्डित 6. जाग्रत 7. धर्मी 8. धर्मव्यवसायी।

दूसरी तरह से गुणस्थान द्वार-

गत्यन्तर (एक गति से दूसरी गति) जाते मार्ग में गुणस्थान तीन-पहला, [illegible] चौथा।

अमर गु. तीन- 3, 12, 13

अप्रतिपाति गु. तीन- 12, 13, 14

तीर्थकर नामकर्म के बन्धक गु. पांच - 4, 5, 6, 7, 8

तीर्थकर के लिए अस्पृश्य गु. पांच - 1,2,3,5,11

शाश्वत गु. छ - 1, 4, 5, 6, 7, 13

अनाहारक गु. पांच - 1, 2, 4, 13*, 14

मोक्ष प्राप्त करने वाला उस भव मे कम से आठ गु. अवश्य प्राप्त करता है- 4, 5. 8, 9, 10, 12, 13, 14 और ससार अवस्थान काल में कम से कम प्रथम गु सहित नौ गु. प्राप्त करता है।

* 1, 2, 4 विग्रह गति एव 13 केवली समु की अपेक्षा।

16. योग द्वार

पहले दूसरे और चौथे गुणस्थान में 13 योग- 1. आहारक और 2. आहारक मिश्र)- इन दो को छोडकर पाये जाते है। तीसरे गु मे 10 योग (1 औदारिक मिश्र 2 वैक्रिय मिश्र 3. आहारक 4. आहारक मिश्र और 5. कार्मण, इन पाचो को छोडकर) पाये जाते है। पांचवे गु. मे 12 योग (1 आहारक 2. आहारक मिश्र और 3 कार्मण को छोडकर) पाये जाते हैं। छठे गु. मे कार्मण के सिवाय चौदह योग पाये जाते है। सातवे गु. * से बारहवे गु. तक चार मनोयोग, चार वचन योग और एक औदारिक- इस प्रकार नौ योग पाये जाते हैं। तेरहवे गु. मे सात योग होते है- 1 सत्य मनोयोग 2 व्यवहार मनोयोग 3. सत्य वचन योग 4. व्यवहार वचन तथा 5. औदारिक- 6 औदारिक मिश्र तथा 7. कार्मण चौदहवे गुणस्थान मे योग नही होता।

* कर्म ग्रन्थ भाग 2 मे सातवे गुण मे अहारक द्विक, वैक्रिय द्विक का उदय नहीं बताया है। तथा प्रज्ञापना सूत्र उ 21 वें पद में भी अप्रमत्तावस्था मे अहारक शरीर नहीं बताया है अत 7 वें गुण मे आहारक व वैक्रिय काययोग नहीं मान कर 9 योग मानना ही उचित लगता है।

17. उपयोग द्वार

पहले और तीसरे गुणस्थान मे छह उपयोग हो सकते हे- तीन अज्ञान- मति श्रुत अज्ञान, विभंग ज्ञान और तीन दर्शन- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन. अवि - चौधे और पांचवे गु. मे छह उपयोग होते है- 3. ज्ञान. 3 दर्शन। छठे मे ९ (10वे गु को छोडकर) सात उपयोग होते है- पूर्वोक्त छह और एक

तेरहवें और चौदहवें गु में केवलज्ञान और केवलदर्शन - ये दो ही उपयोग होते [illegible] गुणस्थान मे उपयोग पावे चार-मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मन:पर्यव ज्ञान।

18. लेश्या द्वार

पहले गुणस्थान से छठे गु. तक छ लेश्याएं पाई जाती है। सातवे गु. मे तेजो, पद्म और शुक्ल- ये तीन लेश्याएं होती हैं। आठवे से बारहवे तक एक शुक्ल लेश्या [illegible] है। तेरहवे गु. मे एक परम शुक्ल लेश्या होती है। चौदहवें गु. मे लेश्या नही होती।

19. हेतु द्वार

हेतु सत्तावन होते है- 5. मिथ्यात्व, 25 कषाय, 15. योग और 12 अव्रत (6 काय 5 इन्द्रिय, 1 मन)।

पहले गुणस्थान में आहारक और आहारक मिश्र को छोडकर शेष पचपन हेतु पाये जाते है। दूसरे गुणस्थान मे पांच मिथ्यात्व को छोडकर पचास हेतु पाये जाते है। तीसरे गु. मे पूर्वोक्त पचास मे से चार अनन्तानुबन्धी औदारिक मिश्र वैक्रिय मिश्र और कार्मण- इन सातो के सिवाय 43 हेतु पाये जाते है। चौथे गु. में पूर्वोक्त 43 के सिवाय औदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र और कार्मण ये तीन विशेष होकर 46 हेतु पाये जाते हैं। पांचवे गु. मे छियालीस मे से अप्रत्याख्यान की चौकडी, त्रस की अविरति और कार्मण- [illegible] घटाकर चालीस हेतु पाये जाते है। छठे गु. मे सत्ताईस हेतु पाये जाते है- 14 योग और 13 कषाय। सातवे आठवे गु. मे औदारिक मिश्र,वैक्रिय वैक्रिय मिश्र और आहारक, आहारक मिश्र- इन पॉच को छोडकर बाईस हेतु पाये जाते है। नौवे गु. मे [illegible] के सिवाय सोलह हेतु पाये जाते है। दसवे गु. मे नौ योग और सज्वलन का लोभ, [illegible] हेतु पाये जाते हैं। ग्यारहवें तथा बारहवें गु. मे चार मन के, चार वचन के और [illegible] औदारिक - ये नौ हेतु पाये जाते हैं। तेरहवे गु. मे सात हेतु पाये जाते है- 1. सत्य मन योग, 2. व्यवहार मन योग, 3 सत्य भाषा, 4. व्यवहार भाषा 5 औदारिक 6. औदारिक मिश्र और 7. कार्मण। चौदहवें गु. मे कोई भी हेतु नहीं होता।

20. मार्गणा द्वार

पहले गुणस्थान में आगति मार्गणा पाच (दूसरे, तीसरे, चौथे, पाचवे और छठे गुणस्थान से आ सकते है) गति मार्गणा पांच (तीसरे, चौथे, पाचवे, छठे* सातवे गुणस्थान मे जा सकते है)।

* जीव चढते परिणामो मे छठे गु मे भी जा सकता है। -ठाणाग सूत्र

दूसरे गुणस्थान की आगति मार्गणा तीन (चौथा, पाचवा, छठा गुणस्थान) गति मार्गणा एक (पहला गुणस्थान)।

तीसरे गुणस्थान की आगति मार्गणा चार (पहला, चौथा, पाचवॉ, छठा गुणस्थान) गति मार्गणा पॉच (गिरे तो पहला*, चढे तो चौथा, पाचवॉ, छठा सातवा गुणस्थान।

* परिणामों की मलीनता मे ऊपर के गुण से नीचे के गुण मे आना।

* परिणामो की विशुद्धि से आगे के गुण मे बढना।

चौथे गुणस्थान की आगति मार्गणा नौ (पहले से ग्यारहवे गुणस्थान तक दूसरे व चौथे को छोडकर) गति मार्गणा छ (चढे तो पांचवॉ, छठा, सातवॉ, गिरे तो तीसरा, दूसरा, पहला गुणस्थान)।

पांचवे गुणस्थान की आगति मार्गणा चार (पहला, तीसरा, चौथा, छठा) गति मार्गणा छ· (चढे तो छठा सातवां, गिरे तो चौथा, तीसरा, दूसरा, पहला गुणस्थान)।

छठे गुणस्थान आगति मार्गणा पांच, पहला, तीसरा, चौथा, पॉचवा, सातवा। गति मार्गणा 6 (चढे तो सातवॉ, गिरे तो पॉचवां, चौथा, तीसरा, दूसरा, पहला गुणस्थान)।

सातवे गुणस्थान की आगति मार्गणा छह (पहला, तीसरा, चौथा, पॉचवा, छठा, आठवा गुणस्थान) गति मार्गणा तीन (चढे तो आठवां गिरे तो छठा, काल करे तो चौथा गुणस्थान)।

आठवे गुणस्थान में आगति मार्गणा दो (सातवां, नवा गुणस्थान) गति मार्गणा तीन (चढे तो नवां, गिरे तो सातवा, काल करे तो चौथा गुणस्थान)।

नवे गुणस्थान मे आगति मार्गणा दो (आठवा, दसवा गुणस्थान) गति मार्गणा तीन (चढे तो दसवा, गिरे तो आठवां, काल करे तो चौथा गुणस्थान)।

दसवे गुणस्थान की आगति मार्गणा दो (नवा, ग्यारहवां गुणस्थान) गति मार्गणा चार (चढे तो ग्यारहववां-बारहवां गिरे तो नवां, काल करे तो चौथा गुणस्थान)।

ग्यारहवे गुणस्थान की आगति मार्गणा एक- दसवां गुणस्थान गति ..।

गिरे तो दसवां, काल करे तो चोथा गुणस्थान।

बारहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक- दसवां गुणस्थान गति मार्गणा [illegible] तेरहवां गुणस्थान।

तेरहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक- बारहवां। गति मार्गणा एक- [illegible] गुणस्थान।

चौदहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक- तेरहवां गुणस्थान। गति मार्गणा [illegible] मोक्ष।

21. ध्यान द्वार*

पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान में आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान पाये जाते हैं। [illegible] ओर पांचवें में आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान ओर धर्मध्यान पाये जाते है। छठे मे आर्त[illegible] धर्मध्यान होता है। सातवें में केवल धर्मध्यान ही है। आठवे से तेरहवें तक [illegible] पाया जाता है और चौदहवें गुणस्थान में परमशुक्ल ध्यान होता है।

* मन की एकाग्रता को ध्यान कहते हैं।

22. दण्डक द्वार

पहले गुणस्थान में चोवीस दण्डक, दूसरे में चौवीस मे से पांच [illegible] उन्नीस, तीसरे और चौथे में (उन्नीस मे से तीन विकलेन्द्रिय के छोड़कर) [illegible], [illegible] मे संज्ञी तिर्यच पंचेन्द्रिय ओर मनुष्य- ये दो, छठे से चोदहवें गु. तक मनुष्य [illegible] दण्डक पाया जाता है।

23. जीवयोनि द्वार

पहले गुणस्थान में चौरासी लाख जीवयोनि। दूसरे गु. में ([illegible] छोड़कर) [illegible] लाख। तीसरे चोथे गु. में (तीन विकलेन्द्रिय [illegible] [illegible] लाख, पांचवे गु. में (चौदह लाख मनुष्यों की और [illegible] प्रकार) [illegible] लाख, छठे गु. से चौदहवें गु. तक मनुष्य की चौदह लाख [illegible] पायी जाती है।

वारहवें तक आठ गु. चारित्र मोहनीय के निमित्त से होते है तथा तेरहवा तथा चौदहवां गु योग के निमित्त से होता है।*

* पहले व तीसरे गुणस्थान मे दर्शन मोहनीय का उदय निमित्त दूसरे दर्शन मोहनीय का अनुदय एव चारित्र मोहनीय अनतानुवधी) के उदय से। चौथे दर्शन मोहनीय का क्षय उपशम या क्षायोपशम निमित्त पाचवे छठे सातवे मे चारित्र मोहनीय का क्षयोपशम निमित्त आठवे, नवे, दसवे मे चारित्र मोहनीय उपशम निमित्त बारहवे मे चारित्र मोहनीय का क्षय निमित्त तेरहवे में योग के सद्भाव का निमित्त चौदहवे मे योग के अभाव का निमित्त होता है।

25. चारित्र द्वार

पहले से चौथे गुणस्थान तक चारित्र नही होता, पांचवे गु. मे देश चारित्र, छठे और सातवे गु. मे तीन चारित्र होते है- 1. सामायिक 2. छेदोपस्थानीय और 3. परिहार विशुद्धि। आठवे, नौवें गु. मे दो चारित्र होते है- 1. सामायिक 2. छेदोपस्थानीय। दसवे गु. मे 1. सूक्ष्मसम्पराय चारित्र होता है। ग्यारहवें से चौदहवे गु. तक यथाख्यात चारित्र होता है।

26. आकर्ष द्वार*

* जीव एक भव की अपेक्षा और अनेक भवो की अपेक्षा प्रत्येक गुणस्थान को जघन्य और उत्कृष्ट कितनी वार फरस सकता है, उस फरसने की सख्या विशेष को आकर्ष कहते हैं।

पहले गुणस्थान का तीसरा भंग (सादि सपर्यवसित), तीसरा, चौथा और पाचवा गुणस्थान एक भव की अपेक्षा जघन्य एक बार उत्कृष्ट पृथकत्व हजार वार प्राप्त हो सकता है। अनेक भवो की अपेक्षा जघन्य दो बार उत्कृष्ट असख्यात वार प्राप्त हो सकता है। दूसरा गुणस्थान एक भव की अपेक्षा जघन्य एक वार उत्कृष्ट दो बार और अनेक भवो की अपेक्षा जघन्य दो बार उत्कृष्ट पाच बार प्राप्त हो सकता है। छठा और सातवां गुणस्थान मिलाकर एक भव की अपेक्षा जघन्य एक वार उत्कृष्ट पृथकत्व 100 बार, अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो बार उत्कृष्ट पृथकत्व 1000 वार। आठवां, नवां, दसवां, गुणस्थान एक भव मे जघन्य 1 वार उत्कृष्ट 4 वार, अनेक भवो की अपेक्षा जघन्य दो बार उत्कृष्ट नौ बार। ग्यारहवा गुणस्थान एक भव मे जघन्य 1 बार उत्कृष्ट 2 बार।

27. समकित द्वार

क्षायिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से चौदहवे गु तक होता है। उपशम सम्यक्त्व चौथे गु. से ग्यारहवें गु. तक होता है। क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्व चौथे से सातवे

गु. तक होता है। सास्वादन सम्यक्त्व दूसरे गु. में होता है। मिथ्यात्व और मिश्र में सम्यक्त्व नहीं है।

28. अन्तर द्वार

पहले गुणस्थान के तीन भंग है- 1. अनादि- अपर्यवसित (सदा से मिथ्यादृष्टि हैं और सदा रहेंगे) 2. अनादि-सपर्यवसित (जिनके मिथ्यात्व की आदि नहीं, किन्तु अन्त है). 3. सादि-सपर्यवसित (जिनके मिथ्यात्व की आदि भी है और अन्त भी है)।

इन तीन भंगो में से तीसरे भंग का अन्तर ज. अन्तर्मुहूर्त और उ. 2 छासठ सागर (अर्थात 132 सागर) झाझेरी है। दूसरे गुणस्थान का अन्तर जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग का उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्. परावर्तन का। तीसरे से लेकर ग्यारहवें गु. तक का अन्तर ज. अन्तर्मुहूर्त और उ. देशोन (कुछ कम) अर्द्ध पुद्गल परावर्तन है। बारहवें, तेरहवें और चोदहवें गु. का अन्तर नहीं है।

29. क्षेत्र प्रमाण द्वार

सास्वादन आदि सभी गुणस्थान वाले जीव लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं, मिथ्यादृष्टि सम्पूर्ण लोक में है और समुद्घात अवस्था में सयोगी भी सम्पूर्ण लोकव्यापी होते है।

30. गुणस्थान स्पर्शना द्वार

3-4थे गुण वाले आठ-आठ राजू को, दूसरे गुण- वाले बारह राजू को, 5 वें [illegible] वाले छह राजू को, 12 वे गुण- वाले राजू के असं. भाग को तथा शेष गुण [illegible] सात राजू प्रमाण लोक को स्पर्श करते है।

31. अल्पबहुत्व द्वार (जीव प्रमाण)

सबसे कम उपशमक (8-11वें गुण. वाले), [illegible] एक समय में 1-54 तक पाये जाते [illegible] (8-10 वें गुणस्थानवर्ती) [illegible] 1-2-[illegible]

[illegible]

तो शत पृथक्त्व से अधिक नही होते)। इनसे तेरहवें गुण वाले जीव सं. गुण और ये पृथक्त्व करोड पाये जाते हैं। इनसे सातवे गुण स. गुणा। उनसे छठे गुण- वाले स गुणा ये ज. और उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार करोड पाये जाते है। उनसे 5 वे गुण वाले असं. गुणा* इनसे दूसरे गुण वाले असं गुणा* इनसे तीसरे गुण वाले अस गुणा* तीसरे गुण से चौथे गुण वाले असं गुणा* इनसे पहले गुण वाले अनत गुणा*

* क्योकि असख्यात गर्भज तिर्यच भी इस पॉचवे गुणस्थान मे है।

* दूसरे गुणस्थान वाले पॉचवे गुणस्थान से असख्यात इस कारण है कि पॉचवॉ गुणस्थान केवल मनुष्य ओर तिर्यचो को होता है, किन्तु दूसरा गुणस्थान विकलेन्द्रियो का भी होता है, परन्तु पॉचवॉ नहीं हो सकता।

* यद्यपि दूसरा और तीसरा गुणस्थान चारो गतियो मे पाया जाता है, परन्तु दूसरे की अपेक्षा तीसरे की स्थिति सख्यात गुणी है तथा दूसरा गुणस्थान तो मात्र उपशम समकित से गिरते हुए ही आ सकता है किन्तु मिश्र गुणस्थान मिथ्यात्व मे चढते हुए अथवा क्षयोपशम से गिरते हुए चौथे पॉचवे छठे किसी भी गुणस्थान से आ सकता हे। इस कारण तीसरे गुणस्थान वाले जीव दूसरे से असख्यात गुण हैं। दूसरे पॉचवे गुण मे से प्रत्येक मे वर्तमान जीव उ से क्षेत्रपल्यो के अस भाग मे विद्यमान प्रदेश राशि प्रमाण है।

* तीसरे गुणस्थान की अपेक्षा चौथे की स्थिति बहुत अधिक है ओर यह भी चारो गति मे पाया जाता हे। अत चौथे गुणस्थान वाले जीव, उनकी अपेक्षा अधिक है।

* यहा एक बोल और भी कह सकते हैं- चौथे गुणस्थान से सिद्ध भगवत अनन्त गुण है। फिर सिद्धों से पहले गुणस्थान वाले अनन्त गुण होते है।

* साधारण वनस्पतिकाय के जीव, सभी मिथ्यादृष्टि है, अतएव पहले गुणस्थान वाले, चाथे गुणस्थान वालों स अनन्त गुण है। ये अनत लोकाकाश प्रदेश प्रमाण है।

* ब्यावर + सैलाना वाली प्रति मे पृ 345 पर सातवे गुण मे जीवो की सख्या पृथक्त्व सौ करोड बताई है परन्तु पच सग्रह भाग दो की गाथा 22 मे निश्चित सख्या का उल्लेख नहीं है। वहॉ लिखा है - पमत्त हयरे उथोक्यरा अर्थात् अप्रमत्त मुनि प्रमत्त सयत से अत्यल्प होते हैं।

इति गुणस्थान स्वरूप



गुणस्थान स्वरूप

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	उदय	उदीरणा	[illegible]	भाव	कारण	परीषह	आत्मा	जीव के भेद	गुण	योग	उपयोग	लेश्या	हेतु	मार्गणा: आगति मार्गणा	मार्गणा: गति
[illegible]	[illegible]	[illegible]	8	7/8	8	7/8	8	1	5	22	6	14	सभी आत्मा-अनंत गुण से संयुक्त हैं	13	6 (अज्ञा)	6	55	5 (2,3,4,5,6)	5 (3,4,5,6,7)
[illegible]	[illegible]	8	[illegible]	7/8	8	7/8	8	3	4	22	7	6		13	6 (ज्ञान)	6	50	3 (4,5,6)	1 (1)
[illegible]	[illegible]	[illegible]	8	7	8	8	8	3	4	22	6	1		10	6 (अज्ञा)	6	43	4 (1,4,5,6)	5 (1,4,5,6,7)
[illegible]	[illegible]	[illegible]	8	7/8	8	7/8	8	उपशम/क्षायक	4	22	7	2		13	6 (ज्ञान)	6	46	9 (1,3,5,--11)	6 (5,6,7,3,2,1)
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	7/8	[illegible]	5/4	3	22	7	1		12	6 (ज्ञान)	6	40	4 (1,3,4,6)	6 (6,7,4,3,2,1)
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	7/8	8	5/4	3	22	8	1		11	7	6	27	5 (1,3,4,5,7)	6 (7,5,4,3,2,1)
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	6	8	5/4	2	22	8	1		9	7	3	22	6 (1,3,4,5,6,8)	3 (8,6,4)
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	6	[illegible]	5/4	2	22	8	1		9	7	1	22	2 (7,9)	3 (9,7,4)
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	5/4	2	22	[illegible]	1		9	7	1	16	2 (8,10)	3 (10,8,4)
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	5/4	2	14	[illegible]	1		9	7	1	10	2 (9,11)	4 (11,12,9,4)
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	7	5/4	1	14	[illegible]	1		9	7	1	9	1 (10)	2 (10,4)
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	14	7	1		9	7	1	9	1 (10)	1 (13)
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	11	[illegible]	1		[illegible]	[illegible]	1	[illegible]	1 (12)	1 (14)
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	11	[illegible]	1		[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	1 (13)	1 ([illegible])
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]		[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	1 (14)	[illegible]

	ध्यान	दण्डक	जीव योनी	निमित्त	चारित्र	आकर्ष एक भव की अपेक्षा		अनेक भव की अपेक्षा		समकित	अन्तर		अल्प बहुत्व
						ज.	उ	ज.	उ		ज.	उ.	
पहले	2	24	84 लाख	दर्शन मो	×	सादि सपर्यवसित		(तीसरे भग की अपेक्षा)		×	अन्तर्मुहूर्त-	132 सा.	12 अनत गुण
दूसरे	2	19	32 लाख	,,	×	1 बार	2 बार	2 बार	5 बार	सास्वादन	पल्य का अस भाग	देशोन अर्द्ध पु	8 अस गुण
तीसरे	2	16	26 लाख	,,	×	1 बार	पृथक्त्व हजार	2 बार	असख्यात ,,	×	अन्तर्मुहूर्त	,,	9 अस गुण
चोथे	3	16	26 लाख	,,	×	1 बार	,,	2 बार	,,	क्षायिक/ उपशम	,,	,,	10 अस गुण
पाँचवे	3	2	18 लाख	चारित्र मो	देश चारित्र	1 ,,	,,	1,,	,,	,,/,,	,,	,,	7 सख्यात गुण
छठे	2	1	14 लाख	,,	3	1 ,,	पत्रृथक्त्व सौ	2,,	पृथक्त्व हजार	,,/,,	,,	,,	6 सख्यात गुण
मातवे	1ध	1	14 लाख	,,	3	1,,	-"-	2,,	-"-	,,/,,	,,	,,	5 सख्यात गुण
आठवे	1शु	1	14 लाख	,,	2	1,,	4बार	2,,	9बार	,,/,,	,,	,,	3 सख्यात गुण
नोवे	1शु	1	14 लाख	,,	2	1,,	4,,	2,,	9,,	,,/,,	,,	,,	3 सख्यात गुण
दमवें	1शु	1	14 लाख	,,	1 सुक्ष्म	1,,	4,,	2,,	9,,	,,/,,	,,	,,	3 सख्यात गुण
ग्यारहवे	1शु	1	14 लाख	,,	1 यथा	1,,	2,,	×	4"	,,/,,	,,	,,	1 सबसे थोडे
बारहवे	1शु	1	14 लाख	,,	1 यथा	1,,	1,,	×	×	क्षायिक	×		2 सख्यात गुण
तेरहवे	1शु	1	14 लाख	योग	1 यथा	1,,	1,,	×	×	,,	×		4 सख्यात गुण
चोदहवें	1श	1	14 लाख	योग	1 यथा	1,,	1,,	×	×	,,	×		2 सख्यात गुण
सिद्ध म	×	×	×	8 कर्मो के क्षय का	×	×	×	×	×	,,	×		11 अनत गुण

* [illegible] दिया गया वह उस क्रम से जानने की अपेक्षा से। तथा 12, 14 गुण परस्पर तुल्य स गुण, 8, 9, 10 गुण, स गुण परस्पर तुल्य समझना।

उत्कृष्ट भोगी उत्कृष्ट योगी - धन्ना शालिभद्र

शालिभद्र का पूर्व जन्म

राजगृह नगर के निकट शालिग्राम में 'धन्या' नाम की स्त्री-कही अन्य ग्राम से आ कर रह रही थी। उसके **'संगमक'** नाम का एक पुत्र था। इसके अतिरिक्त उसका समस्त परिवार नष्ट हो चुका था। वह लोगों के यहाँ मजदूरी करती थी और संगमक दूसरों के बछडे (गौ-वत्स) चराया करता था। किसी पर्वोत्सव के दिन सभी लोगों के यहाँ खीर बनाई गई थी। संगमक ने लोगों को खीर खाते देखा, तो उसके मन में भी खीर खाने की लालसा जगी। उसने घर आ कर माता से खीर बनाने का कहा। धन्या ने अपनी दरिद्र दशा बता कर पुत्र को समझाया, किन्तु बालक हठ पकड बैठा। धन्या अपनी पूर्व की सम्पन्न स्थिति और वर्तमान दुर्दशा का विचार कर रोने लगी। आसपास की महिलाओ ने धन्या के रुदन का कारण पूछा। धन्या ने कहा- "मेरा बेटा खीर माँगता है। मै दुर्भागिनी हूँ। मै भले घर की सम्पन्न स्त्री थी, परन्तु दुर्भाग्य से मेरी यह दशा हो गई। रूखा-सूखा खा कर पेट भरना भी कठिन हो गया, तब इसे खीर कहाँ से खिलाऊँ? यह मानता ही नहीं है। अपनी दुर्दशा का विचार कर मुझे रोना आ गया।" पडोसिन महिलाओं के मन मे करुणा उत्पन्न हुई। उन्होंने दूध आदि सामग्री अपने घरों से ला कर धन्या को दी। धन्या ने खीर पकाई और एक थाली में डाल कर पुत्र को दी। पुत्र को खीर दे कर धन्या दूसरे काम मे लग गई। इसी समय एक तपस्वी संत ने मासखमण के पारणे के लिए, अपने अभिग्रह के अनुसार दरिद्र दिखाई देने वाली धन्या की झोंपड़ी मे प्रवेश किया। संगमक थाली की खीर को ठण्डी होने तक रुका हुआ था। संगमक ने तपस्वी महात्मा को देखा, तो उसके हृदय में शुभ भावों का उदय हुआ। उसने सोचा- "धन्य भाग मेरे। ऐसे तपस्वी महात्मा मुझ दरिद्र के घर पधारे। मेरे पास उन्हें प्रतिलाभने (देने) के लिए खीर है।" इस प्रकार विचार करते हुए उसने मुनिराज के पात्र में थाली ऊँडेल कर सभी खीर बहरा दी। तपस्वी संत के लौटने के बाद धन्या घर में आई। उसने देखा-थाली मे खीर नहीं है। उसने फिर दूसरी वार खीर परोसी। संगमक ने रुचि पूर्वक आकण्ठ खीर खाई। उसे अजीर्ण होकर रोगातंक हुआ। रोग उग्रतम हुआ, परन्तु संगमक के मन में तो तपस्वी संत और उन्हे दिये हुए दान

की प्रसन्नता रम रही थी। उन्ही विचारो मे सगमक ने आयु पूर्ण कर देह छोडी।

शालिभद्र- संगमक का जीव राजगृह नगर मे 'गोभद्र' सेठ की 'भद्रा' भार्या के गर्भ मे उत्पन्न हुआ। भद्रा ने स्वप्न में पका हुआ शालि क्षेत्र (चावल का खेत) देखा। उसने अपने पति को स्वप्न सुनाया। पति ने कहा- "तुम्हारे एक भाग्यशाली पुत्र होगा।" भद्रा को 'दान करने' का दोहद हुआ। गोभद्र सेठ ने उसका दोहद पूर्ण किया। गर्भकाल पूर्ण होने पर एक सुदर पुत्र का जन्म हुआ। स्वप्न के अनुसार माता-पिता ने पुत्र का नाम 'शालिभद्र' रखा। उसका पालन पोषण राजसी ढंग से हुआ। उसे योग्य वय मे विद्याकला मे निपुण बनाया और अपने समान समृद्धिशाली श्रेष्ठियो की बत्तीस सुदर सुशील कन्याओ के साथ लग्न कर दिये। शालिभद्र अपनी बत्तीस प्रियतमाओ के साथ भव्य भवन मे उत्तम भोग भोगता हुआ अपने पुण्य-फल का रसास्वादन कर रहा था। वह रागरग मे इतना लीन हो गया कि उसे सूर्य उदय-अस्त और दिन-रात का भान ही नही रहता था। भगवान् महावीर प्रभु का उपदेश सुन कर गोभद्र सेठ विरक्त हुए और भगवान् के पास दीक्षित होकर तप-संयम का पालन कर स्वर्गवासी हुए। व्यापार-व्यवसाय भद्रा माता ही देखने लगी। शालिभद्र को इस ओर देखने की आवश्यकता ही नही रही। गोभद्र देव ने अवधिज्ञान से अपने पुत्र को देखा। पुत्र-वात्सल्य एवं पूर्व पुण्य से आकर्षित होकर देव अपने पुत्र और पुत्र-वधुओ के लिए प्रतिदिन दिव्य-वस्त्रालंकार भेजने लगा। शालिभद्र के लिए तो इस मनुष्यभव मे केवल भोग भोगने का ही कार्य था।

एक बार राजगृह मे कुछ विदेशी व्यापारी रत्नकम्बल लेकर आये। उनका मूल्य बहुत अधिक होने के कारण महाराज श्रेणिक ने भी वे रत्नकम्बल नहीं खरीदे। विदेशी व्यापारी निराश होकर जा रहे थे कि भद्रा सेठानी के महलो की तरफ आ गये। भद्रा के पास अपार स्वर्ण-भण्डार भरे थे, उसने विदेशी व्यापारियो को मुँह मागा मूल्य देकर रत्नकम्बल खरीद लिए। कम्बल सोलह ही थे, अत उनके दो-दो टुकडे करके बत्तीसो पुत्र-वधुओं को दे दिया।

महारानी चेलणा ने राजा श्रेणिक से एक रत्नकम्बल की मॉग की। राजा ने व्यापारियो को बुलाया तो पता चला कि सभी कम्बल सेठानी भद्रा ने खरीद लिए है। राजा ने सेठानी के पास कहलाया "एक कम्बल हमे चाहिए, जो भी मूल्य हो वह लेकर कम्बल दे दे।" भद्रा ने विनयपूर्वक वापस सूचित किया कि "वे रत्नकम्बल तो खण्डित हो गए। मेरी

पुत्र-वधुओं ने उनके पाद-प्रोच्छन (पैर पोछने के रूमाल) बना लिए हैं, अत· अब मै क्षमा चाहती हूॅ।''

राजा श्रेणिक को यह जानकर बहुत ही आश्चर्य हुआ कि नगर मे उससे भी अधिक श्रीमन्त और उदार लोग बसते हैं, जिनके वैभव और भोग-साधनो की थाह पाना कठिन है। राजा को जिज्ञासा हुई कि आखिर उसका पुत्र कैसा है, जिसकी पत्नियॉ देव-दुर्लभ रत्नकम्बल के पाद पोंछन बनाकर फेंक देती हैं। राजा ने भद्रा को कहलाया- ''महाराज आपके पुत्र शालिभद्र को देखना चाहते हैं।''

भद्रा असमंजस में पड गई। शालिभद्र आज तक सातवीं मंजिल से नीचे भी नहीं उतरा, उसे कुछ भी लोक-व्यवहार का पता नहीं। राजा कहीं अप्रसन्न न हो जाये, अत वह स्वयं राज-दरबार में उपस्थित हुई और महाराज से प्रार्थना की - ''महाराज ! शालिभद्र आज तक कभी महल से नीचे नहीं उतरा, वह बहुत ही सुकुमार है, यहां आने मे उसे बहुत कष्ट होगा, अत. कृपा कर आप सपरिवार मेरे घर पर पधार कर आतिथ्य स्वीकार करें।

भद्रा की प्रार्थना स्वीकार कर राजा श्रेणिक भवन मे पहुॅचा। उसकी विशाल शोभा और मनोहर व्यवस्था देखकर चकित वह रह गया। भद्रा ने राजा का शाही स्वागत किया। शालिभद्र को बुलाने सेवक को ऊपर भेजा। सेवक ने जाकर कहा- ''अपने महलों मे राजा श्रेणिक आए हैं, अत. आपको नीचे बुलाया है।'' शालिभद्र ने कहा- ''उसे जो कुछ लेना-देना हो, देकर विदा करो, मेरा वहॉ क्या काम है?'' तब भद्रा स्वयं ऊपर गई, उसने सब स्थिति समझाई- ''श्रेणिक राजा अपने स्वामी हैं, नाथ हैं, वे तुमसे मिलना चाहते हैं, तुमको अपने राज-भवन में बुलाया था, लेकिन मेरी प्रार्थना पर ही वे अपने घर आये हैं, चौथी मंजिल में मैंने उन्हें ठहराया है, बेटा दो-तीन मंजिल उतरकर तो अपने स्वामी का स्वागत करना ही चाहिए.....।''

शालिभद्र माता के आग्रह पर नीचे आया, अनमने भाव से राजा से औपचारिक मुलाकात भी की। श्रेणिक और चेलणा आदि राजपरिवार शालिभद्र के वैभव व सौकुमार्य आदि से अत्यन्त चकित हुए, पर शालिभद्र इस मुलाकात से खिन्न हो गया।

उसने ''स्वामी ! नाथ !'' ये शब्द जीवन में पहली बार सुने। इन शब्दों की ध्वनि से उसके मन, मस्तिष्क और अन्तश्चेतना के तार झनझना उठे। उसे आज पहली वार अपनी तुच्छता और पामरता का भान हुआ। उसके मन में पराधीनता की पीडा जगी, इस

पीडा की टीस इतनी गहरी पैठी कि वह व्याकुल हो गया। उस पीडा से मुक्त होकर पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए वह सब कुछ निछावर करने को तैयार हो उठा।

इसी बीच वह धर्मघोष नामक मुनि के सम्पर्क मे आया, फलस्वरूप उसे पूर्ण स्वतन्त्रता का मार्ग- संयम-साधना का ज्ञान हुआ, धीरे-धीरे उसके मन में विषयो से विरक्ति होने लगी, प्रतिदिन एक-एक पत्नी और एक-एक शय्या का परित्याग कर वह संयम-साधना का अभ्यास करने लगा।

पत्नियों का व्यंग्य और धन्ना की दीक्षा

उसी नगर में धन्ना नाम का धनाढ्य श्रेष्ठी रहता था। वह शालिभद्र की कनिष्ट भगिनी का पति था। भाई के संसार-त्याग की बात सुन कर बहिन के हृदय मे बन्धु विरह का दुःख भरा हुआ था। धन्ना ने पत्नी की ऑखों में ऑसू देख कर पूछा .-

"प्रिये ! इस चन्द्र-वदन पर शोक की छाया और ऑसू की धारा का क्या कारण है?"

"नाथ ! मेरा बन्धु गृह-त्याग कर साधु होना चाहता है इसलिए वह एक-एक पत्नी और एक-एक शय्या का प्रतिदिन त्याग करने लगा है। भाई के विरह की सभावना से मेरा हृदय शोक पूर्ण हो रहा है- स्वामिन्"- सुभद्रा ने हृदयगत वेदना व्यक्त की।

"क्या एक पत्नी प्रतिदिन त्यागता है? तब तो वह कायर है। यदि त्याग ही करना है, तो सिंह के समान एक साथ सब कुछ त्याग देना चाहिए। क्रमश त्यागना तो सत्त्वहीनता है"- धन्ना ने व्यंग्यपूर्वक कहा।

पति का व्यंग्य सुनकर अन्य पत्नियॉ बोली- "यदि त्यागी बनना सरल है, तो आप ही एक-साथ सर्वस्व त्याग कर निर्ग्रथ-दीक्षा क्यो नहीं लेते? बातें करना जितना सहज है, कर-दिखाना उतना सरल नहीं है।"

धन्ना ने तत्काल उठ कर कहा- "बस, मै यही चाहता था। तुम सब मेरे लिए बन्धन बनी हुई थीं। तुम्हारी अनुमति मुझे सहज ही प्राप्त हो गई। अभी से मैने तुम सब का त्याग किया। अब मै दीक्षित होने जा रहा हूँ।"

पत्नियॉ सहम गई। उन्होने कहा- "नाथ ! हँसी मे कही हुई बात सत्य नहीं होती। आप हमे क्षमा कीजिए और गृह-त्याग की बात छोड दीजिए।"

धन्ना ने कहा- "धन, स्त्री और कुटुम्ब-परिवार सब अनित्य है। यदि इनका त्याग

नहीं किया जाए, तो ये स्वयं छोड़ देते हैं या मर कर छोड़ना पड़ता है। मैं स्वयं ससार का त्याग करना चाहता हूँ।" कह कर धन्ना खड़ा हो गया।

पति को जाता देख कर पत्नियाँ भी संयम लेने के लिए तत्पर हो गई। पुण्ययोग से भगवान् महावीर वहाँ पधारे। धन्ना ने दीनजनों को विपुल धन का दान दिया और पत्नियों सहित शिविका में बैठ कर भगवान् के समीप गया। सभी ने भगवान् से दीक्षा ग्रहण की। जब ये समाचार शालिभद्र ने सुने, तो उसने सोचा- "बहनोई ने मुझे जीत लिया।" वह भी तत्काल दीक्षा लेने को तत्पर हो गया। महाराज श्रेणिक ने शालिभद्र का दीक्षा-महोत्सव किया। शालिभद्र भी भगवान् का शिष्य बन गया। धन्ना और शालिभद्र संयम और तप के साथ ज्ञान की आराधना करने लगे। वे बहुश्रुत हुए। वे मासखमण दो मास, तीन मास चार मास आदि उग्रतप घोरतप करने लगे। उनका शरीर रक्तमास रहित हड्डियों का चर्माच्छादित ढाँचा मात्र रह गया।

माता ने पुत्र और जामाता को नहीं पहचाना

कालान्तर में भगवान् के साथ दोनों मुनि अपनी जन्मभूमि- राजगृह पधारे। भगवान् की वन्दना करने के लिए जनता उत्साहपूर्वक आने लगी। धन्ना और शालिभद्र मुनि मासखमण के पारणे के लिए भिक्षार्थ जाने की अनुज्ञा लेने के लिए भगवान् के समीप आए। नमस्कार किया। भगवान् ने शालिभद्र से कहा- "आज तुम तुम्हारी माता से मिले हुए आहार से पारणा करोगे।" दोनों मुनि नगर मे भद्रा माता के द्वार पर पहुँचे। मुनियों का शरीर तपस्या से शुष्क हो गया था। वे पहचाने नहीं जा सकते थे। उधर भगवान् तथा पुत्र-जामाता मुनियों को वन्दना करने जाने की शीघ्रता व्यग्रता से भद्रा सेठानी मुनियों की ओर ध्यान नहीं दे सकी। मुनि लौट आये। मार्ग में उन्हे शालिग्राम की वृद्धा माता धन्या मिली, जो शालिभद्रजी की पूर्व-भव की माता थी। वह दही-दूध बेचने के लिए नगर में आई थी। मुनियों को देखते ही उसके मन में स्नेह उमडा। उसने हाथ जोड़ कर दही ग्रहण करने का निवेदन किया। मुनि दही ग्रहण कर भगवान् के समीप आए। वन्दना की और दही प्राप्त होने आदि की आलोचना की। भगवान् ने कहा- "वह दही देने वाली वृद्धा तुम्हारी पूर्वभव की माता है।" मुनियो ने पारणा किया। दोनों मुनि भगवान् की आज्ञा लेकर वैभारगिरि पर गये और पादपोपगमन अनशन कर के शिला पर लेट गये। उधर महाराजा श्रेणिक भद्रा सेठानी सहित वन्दना करने आए। वन्दना करने के पश्चात् धन्ना- शालिभद्र

मुनियो के विषय मे पूछा। भगवान् ने भद्रा से कहा-"दोनो मुनि तुम्हारे यहाँ भिक्षाचारी के लिए आए थे, परन्तु तुमने उन्हें पहिचाना नही। उन्हे पूर्वभव की माता से दही मिला। वे पारणा कर के वैभारगिरि पर गये। वहां अनशन करके सोए हुए है।"

पुत्र को भिक्षा मिले बिना घर से लौट जाने की बात भगवान् से सुन कर भद्रा को पछतावा हुआ। महाराजा और भद्रा वैभारगिरि पर आये और मुनियो को वन्दन-नमस्कार किया। मुनियों का शुष्क एवं जर्जर शरीर देख कर भद्रा विह्वल हो गई। वह रोती हुई वोली-" हे वत्स ! तुम घर आये, परन्तु मुझ दुर्भागिनी ने, तुम्हे देखा ही नहीं और अपने घर से खाली लौट गए। पहले तुमने मेरी ममता पर विजय पाई और अब अपने शरीर का त्याग कर शरीर मोह पर भी विजय पा रहे हो। हॉ, मै कितनी भाग्यहीना हूँ।' नरेश ने भद्रा को समझाया- "भद्रे ! तुम्हारा पुत्र तो हम सब के लिये वन्दनीय हो गया। अब ये शाश्वत सुख के स्वामी होंगे। इन्हे परम सुखी होते देख कर तो प्रसन्न होना चाहिए। तुम महान् पुण्यशालिनी माता हो। शोक मत करो।" भद्रा आश्वस्त हुई और वन्दना कर के राजा के साथ लौट गई। यथा समय आयु पूर्ण होने पर धन्ना मुनि उसी भव मे सिद्ध बुद्ध-मुक्त हुए। जवकि शालिभद्र मुनि सर्वार्थसिद्ध महाविमान मे उत्पन्न हुए। वहॉ तेतीस सागरोपम प्रमाण आयु भोग कर मनुष्य भव प्राप्त करेगे और तप-संयम की आराधना कर मुक्त हो जाएगे।

भगवान के धर्म शासन में इस प्रकार त्याग एवं तप के शिखरयात्रियो की एक लम्वी परम्परा चलती रही है। ये गृह जीवन मे भी श्रेष्ठ अरि विशिष्ट बन कर रहे और तप-त्याग के पथ पर बढे- तब भी उत्कृष्ट और विशिष्ट बने।



2. मुनि गजसुकुमाल

माता की व्यथा- त्रिखण्डाधिपति श्रीकृष्ण की माता देवकी थी। वह उदास एवं चिन्तामग्न थी। अनीयसेन, अनन्त सेन, अनीकसेन, अनहित रिपु, देवसेन तथा शत्रुसेन ये छः पुत्र देवकी महारानी के हैं। इस बात का रहस्योद्घाटन भगवान अरिष्टनेमी द्वारा किये जाने के बाद महारानी देवकी की व्यथा बढ़ गई। उनका मातृ हृदय बिलखने लगा। वे सोचने लगीं मैं कैसी भाग्यहीन हूँ पुण्यहीन हूँ, जो मेरे देव के समान सात पुत्र हुए फिर भी एक भी पुत्र का लालन-पालन नहीं किया।[1] इन छः दिव्य पुत्रों से तो वञ्चित ही रही तथा सांतवें पुत्र श्रीकृष्ण का लालन-पालन भी नन्द यशोदा ने किया।[2]

मैं त्रिखण्डाधिपति की माता हुई सात-सात उत्तम पुत्रों को जन्म दिया फिर भी इस परम सुख से वंचित ही रही। मुझे उन सामान्य स्त्रियों जितना सुख भी नहीं मिला जिनकी गोद में बालक क्रीड़ा करते हैं और वे परम सुख का अनुभव करती हैं। देवकी इन्हीं विचारों में डूबी हुई थी तभी श्रीकृष्ण वासुदेव अपनी माता को चरण-वन्दन करने पहुँचे। माता को चिन्तामग्न देखकर चरण-वन्दन कर चिन्ता का कारण जाना।

श्रीकृष्ण द्वारा तप आराधन- श्रीकृष्ण ने माता से कहा- ''माताश्री मैं आपका मनोरथ पूर्ण हो, ऐसा प्रयत्न एवं उपाय करूँगा।'' इस प्रकार आशास्पद, वचनों मे माता को सन्तुष्ट करके श्रीकृष्ण पौषधशाला में आये। फिर तेला करके हरिणगमैषी देव की आराधना की। देव का आसन कम्पित हुआ। देव पौषधशाला में आया। तब श्री कृष्ण ने कहा- ''मुझे एक अनुज बन्धु की आवश्यकता है। इसीलिये मैंने तपः साधना की है।'' देव ने कहा- ''श्रीकृष्ण तुम्हारे एक छोटा भाई शीघ्र ही होगा किन्तु वह यौवन प्राप्त होते ही भगवान् अरिष्टनेमि के समीप प्रव्रज्या ग्रहण कर लेगा।'' देव भविष्य बताकर चला गया। श्री कृष्ण पौषध पूर्ण करके माता के पास आए और बोले- ''माता ! मेरे छोटा भाई

---

1. अनीकसेन आदि छ भाइयो को हरिणगमैषी देव सहरण कर सुलसा के पास पहुँचाता रहा था। अतः उनका लालन-पालन नाग गाथापति तथा सुलसा के यहाँ हुआ।

2. भगवान अरिष्टनेमि से देवकी महारानी ने पूछा- मैंने ऐसा कौनसा पापकर्म किया जिससे मुझे इस प्रकार पुत्रो के लालन-पालन के सुख से वंचित रहना पडा तथा छ पुत्र तो मुझे प्राप्त ही नहीं हुए। भगवान ने समाधान किया- देवकी तुमने पूर्वभव में सौत के सात रत्न चुराये थे, तुम्हारी सौत रोने लगी तो तुमने एक रत्न लौटा दिया किन्तु छ नहीं दिए। इसी का परिणाम है कि तुम्हारा एक पुत्र तो तुम्हें मिल गया किन्तु छ पुत्र नही मिले।

शीघ्र ही होगा।' माता अतीव प्रसन्न हुई।

गजसुकुमाल का जन्म- वसुदेव महाराजा एवं देवकी रानी के यहाँ यथासमय एक सुंदर पुत्र का जन्म हुआ। उसका शरीर जपाकुसुम जैसा तथा हाथी के तालु के समान सुकोमल था। अतः उसका नाम गजसुकुमाल रखा गया। वह माता-पिता बन्धु आदि सभी का अत्यन्त प्रिय था। क्रमशः बढते हुए गजसुकुमाल ने यौवन अवस्था को प्राप्त किया।

भगवान् अरिष्टनेमि का द्वारिका में आगमन- प्रभु अरिष्टनेमि ग्रामानुग्राम विचरण कर भव्य जीवों का उद्धार करते हुए द्वारिका पधारे। श्रीकृष्ण वासुदेव अपने अनुज बधु गजसुकुमाल के साथ हस्ति पर आरूढ होकर राजसी ठाठ-बाट से प्रभु के दर्शनार्थ निकले।

सोमा का अन्तःपुर में प्रवेश- द्वारिका में सोमिल नाम का बुद्धिसम्पन्न ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी सोमश्री ब्राह्मणी भी सुंदर थी। उनके सोमा नाम की कन्या थी। जो उत्कृष्ट रूप लावण्य एवं शरीर शौष्ठव वाली थी। वह अनेक सखियों तथा दासियो के साथ घर से निकलकर क्रीडा स्थल पर स्वर्णमय गेद से खेल रही थी। श्रीकृष्ण वासुदेव उसी मार्ग से होकर भगवान को वन्दना करने जा रहे थे। उनकी दृष्टि खेलती हुई सोमा पर पडी। उसके उत्कृष्ट सौन्दर्य को देखकर चकित रह गए। उन्होने उसका परिचय पूछा एवं विश्वस्त सेवक को आदेश दिया-''तुम सोम शर्मा ब्राह्मण के यहाँ जाओ और उसकी पुत्री की याचना गजसुकुमाल के लिए करो। फिर उसे कुँआरे अन्त पुर मे पहुँचाकर मेरी आज्ञा पालन की सूचना दो। श्रीकृष्ण महाराज की आज्ञा का पालन हुआ कन्या कुँआरे अन्त पुर मे भेज दी गई।

गजसुकुमाल की प्रव्रज्या एवं मुक्ति- श्रीकृष्ण एव गजसुकुमाल भगवान् को वन्दन करने पहुँचे। भगवान को वन्दन करके उपदेश सुना। उपदेश का गजसुकुमाल पर गंभीर प्रभाव पडा। संसार की असारता समझकर विरक्त हो गए। तथा भगवान को वन्दना कर बोले- ''प्रभु आपके उपदेश से मै विषय-विकार और संसार सम्बन्धो से विरक्त हो गया हूं। मै माता-पिता से अनुमति प्राप्त करके श्री चरणो मे निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ।'' भगवान ने कहा- ''देवानुप्रिय तुम्हे जैसा सुख हो, वैसा करो। धर्म साधना

में विलम्ब मत करो।"

गजसुकुमाल राजमहल आए तथा माता-पिता से जिनेश्वर भगवन्त के समीप निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या ग्रहण की अनुमति की प्रार्थना की। माता-पिता ने बहुत समझाया कि भुक्त भोगी होकर प्रव्रज्या ग्रहण करना। श्रीकृष्ण ने भी भॉति-भॉति की युक्तियो द्वारा समझाने का प्रयास किया तथा अंतिम उपाय के रूप में प्रलोभन उपस्थित किया- "हम चाहते हैं कि एक दिन के लिये ही राज्याधिकार ग्रहण कर लो। हम तुम्हारी राज्यश्री देखना चाहते है। हमारी एक अंतिम इच्छा तो पूर्ण कर दो।"

कुमार माता-पिता बन्धु की इस बात पर विचारपूर्वक मौन रह गए। श्रीकृष्ण के आदेश से राज्याभिषेक हुआ। गजसुकुमाल महाराजाधिराज होकर राज्य सिहासन पर आरूढ हुए। श्रीकृष्ण ने राज्याधिपति कुमार के सम्मुख खडे होकर पूछा- "राजन् ! आज्ञा दीजिए कि हम आपका किस प्रकार हित करे। हमें क्या करना चाहिए ?" महाराजा गजसुकुमाल ने कहा- "हे देवानुप्रिय ! राज्य के कोषालय से तीन लाख स्वर्णमुद्राएं निकालकर, उनमे से दो लाख के रजोरहण तथा पात्र मंगवाओं, नापित को बुलवाओ, मैं उससे अपने बाल कटवाऊंगा और उसे एक लाख पारितोषिक दूंगा। आप मेरे अभिनिष्क्रमण की तैयारी कीजिए।"

माता-पिता आदि सभी समझ गए गजसुकुमाल को किसी भी प्रलोभन से नही रोका जा सकता है। उन्होंने अनुमति प्रदान कर दी तथा दीक्षा महोत्सव किया। गजसुकुमाल ने निर्ग्रन्थ मुनि प्रव्रज्या स्वीकार की।

सोमिल का उपसर्ग (वैर जागृत) एवं **मुनि गजसुकुमाल की मुक्ति-** प्रव्रज्या स्वीकार करने के बाद गजसुकुमाल ने प्रभु से प्रार्थना की- भगवन् ! यदि आप आज्ञा प्रदान करे तो मैं महाकाल श्मशान में जाकर एक रात्रि की भिक्षु प्रतिमा धारण करना चाहता हूॅ। भगवान ने अनुमति प्रदान कर दी। मुनिजी विधिपूर्वक भिक्षु प्रतिमा धारण करके कार्योत्सर्ग पूर्वक ध्यान मे लीन हो गए।

सोमिल ब्राह्मण यज्ञ के लिए समिधा दर्भ, पुष्पादि आदि लेने के लिये वन में गया था। वह समिधादि लेकर महाकाल श्मशान के निकट से निकल रहा था तभी उसकी दृष्टि ध्यानारूढ गजसुकुमाल मुनि पर पड़ी। उसका क्रोध भडका। पूर्ववद्ध वैर जागृत हो गया।

उसने सोचा इस दुष्ट ने मेरी निर्दोष पुत्री का त्याग कर दिया और यहाँ महात्मापन का ढोग कर रहा है। इसे ऐसा दण्ड दूँगा कि सारा ढोग समाप्त हो जाएगा। सन्ध्या का समय था, लोगों का आवागमन रूक चुका था। उसने तलैया के किनारे की गीली मिट्टी ली और ध्यानस्थ अनगार के मस्तक पर उस मिट्टी की पाल बाँध दी। एक फूटा मिट्टी का बर्तन उठाया तथा शव दहन के जलते अंगारो को भरकर मुनि के मस्तक पर डाल दिया। इसके वाद वहाँ से भाग गया।

मुनि के सिर पर अंगारे पडते ही मस्तक जलने लगा और घोर वेदना होने लगी। वह आग तो शरीर को जला रही थी किन्तु आभ्यंतर ध्यानाग्नि से कर्म रूपी कचरा भी जलकर भस्म हो रहा था। असहनीय घोरतम वेदना शरीर मे बढ रही थी तो दूसरी ओर आत्मस्थिरता एवं एकाग्रता बढ रही थी। वे महात्मा क्षपक श्रेणी पर आरूढ हुए। घनघाति कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान, केवल दर्शन को प्राप्त किया तथा सिद्ध गति को प्राप्त हो गए। गजसुकुमाल अनगार सिद्ध परमात्मा बन गए। देवो ने सुगन्धित जल, पचवर्ण के सुगन्धित पुष्पो एव वस्त्रो की वर्षा की तथा वादिन्त्र तथा गीत से उन महर्षि की आराधना का गुणगान किया।

सोमिल की मृत्यु- दूसरे दिन प्रात काल श्रीकृष्ण सपरिवार भगवान के वन्दन करने पहुँचे। वन्दन नमस्कार के बाद गजसुकुमाल अणगार नहीं दिखाई दिए तो भगवान से पूछा- "भगवन्! मेरे छोटे भाई मुनि गजसुकुमाल कहाँ है। मै उनको वन्दन करना चाहता हूँ।" भगवान ने कहा- "कृष्ण! गजसुकुमाल अनगार ने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया है।" श्री कृष्ण ने आश्चर्य से पूछा- "भगवन् यह कैसे हुआ? गजसुकुमाल ने एक रात मे ही आत्मार्थ साधकर मुक्ति कैसे प्राप्त कर ली?" भगवान ने कहा- प्रव्रजित होने के पश्चात्- गजसुकुमाल मुनि मुझसे आज्ञा प्राप्त करके भिक्षु की वारहवीं प्रतिमा धारण कर महाकाल श्मशान मे कार्योत्सर्ग कर ध्यानस्थ खडे हो गए। इसके वाद उधर से एक पुरुष निकला, उसकी सहायता से मुनिवर ने क्षपक श्रेणी का आरोहण कर घनघाति कर्मो को नष्ट किया एव केवल ज्ञान, केवल दर्शन प्राप्त कर लिया, फिर योगो की प्रवृति को रोक कर सिद्ध अवस्था मुक्ति को प्राप्त कर लिया।

"हे भगवन्! मृत्यु दण्ड के योग्य वह पापात्मा कौन है? जो मेरे छोटे भाई की अकाल मृत्यु का कारण बना?" श्रीकृष्ण ने क्षोभ एव आतुरतापूर्वक पूछा। भगवन् ने फरमाया- "श्री कृष्ण! तुम उस पर रोष मत करो। उस पुरुष ने तो गजसुकुमाल अनगार

की मुक्ति में सहायता की है। उसने लाखों [1] वर्षो पुराने संचित कर्मो से मुक्त करवाकर कर्मो की निर्जरा में सहायता दी है।''

कृष्ण बोले- ''भगवन् ! वह कौन है ? मैं उसे कैसे पहचान सकूँगा?'' भगवान ने कहा-''तुम यहॉ से नगर लौटोगे तब रास्ते में तुम्हे देखते ही जो व्यक्ति प्राण त्याग दे, जान लेना वही पुरुष है।''

श्रीकृष्ण दुखित मन से प्रभु को वन्दन कर लौटे। इधर प्रातःकाल सोमिल ब्राह्मण को विचार आया, मैंने गजसुकुमाल के सिर पर अंगारे रखे थे। महाराज श्रीकृष्ण जब प्रातःकाल भगवान को वन्दन करने जाएंगे तब उनको सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु सब कुछ बता देंगे। तब श्रीकृष्ण महाराज अपने भ्राता मुनि के हत्यारे को कुमौत से मारेंगे। इस प्रकार सोचकर भयभीत होता हुआ नगर से भाग जाने को घर से निकला। इधर वह घर से निकला उधर से कृष्ण महाराज लौटते हुए दिखाई दिए। उन्हें देखते ही भय से उसके प्राण निकल गए। श्रीकृष्ण समझ गए, यही मेरे लघु भ्राता अनगार का घातक है।

मुनि गजसुकुमाल के वियोग का आघात कृष्ण महाराज सहित बहुत परिजन पुरजन को लगा उठती युवावस्था एवं अस्वाभाविक नृशंसतापूर्ण मृत्यु से विरक्त होकर समुद्रविजयजी आदि दर्शाह, भगवान अरिष्टनेमि के सात सहोदर बन्धु, माता शिवादेवी अनेक राजकुमार, यादव कुल की अनेक महिलाओं और राजकुमारियों ने प्रभु के समीप दीक्षा अंगीकार कर मुक्ति पथ पर कदम बढाए।



1. निन्यानवे लाख भव पूर्व सोमिल ब्राह्मण का जीव गजसुकुमाल के जीव की सौत का पुत्र था। पुरजन परिजन सभी उस सौत को पुत्र की मॉ होने से अधिक आदर सम्मान देते तथा उसके पति का भी उस पर अधिक प्रेम था। इससे वह दुखी (गजसुकुमाल का जीव) रहती थी। तब गजसुकुमाल के जीव ने सोचा पुत्र ही न रहे तो सारी झझट खत्म हो जाए। एक बार सौत का पुत्र बीमार हुआ। उसने औषधि का बहाना बनाकर उस बालक के सिर पर गरम-गरम रोटी बाँध दी, तीव्र वेदना बालक सहन न कर सका और उसने प्राण त्याग दिए। तब गजसुकुमाल की आत्मा से निकाचित कर्म को बाँध लिया। इस वैर के परिणामस्वरूप सोमिल ब्राह्मण ने भी उनके मस्तक पर पाल बाधी तथा अंगारे रखकर वैर का बदला लिया।

3. महासती मदन रेखा

सुदर्शन पुर नाम के नगर मे मणिरथ नाम का राजा था। राजा मणिरथ के छोटे भाई का नाम युगबाहू था। युगबाहू वीर, कलाकुशल तथा विनम्र था। युगबाहू की पत्नी मदनरेखा थी। रूप और लावण्य में कामदेव सी सुन्दरता देखकर ही माता-पिता ने उसका मदनरेखा नाम रखा। मणिरथ और युगबाहू दोनो भाइयों मे आदर्श भ्रातृ स्नेह था। राजा मणिरथ अपने छोटे भ्राता को पुत्रवत् रखता। युगबाहू भी अपने बडे भ्राता को पितृ-तुल्य आदर देता तथा उनकी इच्छाओ के विरुद्ध कुछ भी कार्य न करता।

एक बार राजा मणिरथ ने विचार किया मेरा छोटा भाई युगबाहू वीर, विनम्र, न्याय नीति कुशल और मेरा भक्त है। यह मेरा उत्तराधिकारी बनने के सर्वथा योग्य है इसलिए इसे युवराज पद देकर अपने भार से थोडा मुक्त हो जाऊँ। उसने भाई को आग्रह पूर्वक युवराज बना दिया ।

राजा मणिरथ की कुदृष्टि

एक बार मदनरेखा अपने महलो की छत पर सखी-सहेलियो के साथ उन्मुक्त रूप से बैठी थी। मणिरथ भी अपनी छत पर घूम रहा था, उसकी नजर सीधी मदनरेखा के दिव्य सौन्दर्य पर गड़ गई। समूचे शरीर मे बिजली-सी दौड गई। मदनरेखा को उसने बहुत बार देखा था, किन्तु आज का देखना कुछ विचित्र ही था। इतने दिन पुत्री की नजर से देखा था, आज नारी की नजर से, इतने दिन देखने पर मन प्रसन्न होता था, आज देखते ही व्याकुल हो गया।

मणिरथ ने मदनरेखा को अपनी ओर आकृष्ट करने के हजारों प्रयत्न किए। विश्वस्त दासियों के साथ सुदर भोग- सामग्रियॉ उसे भेजनी शुरू की। अनेक कामोत्तेजक भोज्य पदार्थ, मिठाइयॉ और सुगंधित श्रृंगार सामग्रीयो के थाल भर कर मदनरेखा के महलो मे आने लगे। मदनरेखा ने इसे मणिरथ का पितृ-प्रेम एव वात्सल्य समझा। वह आदरपूर्वक स्वीकार करती गई। दुराशय मणिरथ ने इस स्वीकृति को ही मदनरेखा की प्रणयेच्छा समझ लिया था। सोचा- मदनरेखा अवश्य ही मुझे चाहती है और एक दिन मौका देख कर सीधा मदनरेखा के महलो मे चला आया।

मदनरेखा चौक उठी। उसकी आकुल ऑखो और चेहरे के प्रणयाकुल रंग-ढंग से

वह समझ गई। मणिरथ पथभ्रष्ट होने जा रहा है! इस समय में जेठ का लिहाज उसके धर्म के लिए खतरा बन जाएगा। वह सावधान होकर खड़ी हो गई और दृढ स्वर में पूछा - "महाराज! आप अकेले यहाँ? इस समय? मैं तो आपकी पुत्री हूँ, जो भी आज्ञा थी, सूचना करते, आपको यहाँ आना उचित नही है!"

मदनरेखा के सौन्दर्य पर दृष्टि गड़ाये मणिरथ ने निर्लज्जतापूर्वक कहा- "मदनरेखा प्यार में कुछ भी अनुचित नही होता, कोई भी असमय नही होता। अप्सराओ को मात देनेवाले तुम्हारे इस सौन्दर्य ने कब से मुझे बैचेन कर रखा है, आखिर आज ही मौका लगा है.... !"

'महाराज ! आप गुमराह हो गए हैं। मैं छोटे भाई की बहू तो आपकी पुत्री तुल्य हूँ। पुत्री पर बुरी नजर ? पिता ही अपनी पुत्रियों पर बुरी नजर करने लगेगा तो संसार में फिर धर्म रहेगा कहाँ ? महाराज ! आप चुपचाप चले जाइए, नहीं तो अनर्थ हो जाएगा.....।'

मदनरेखा की फटकार से मणिरथ का नशा उतर गया। शर्म से मुँह नीचा झुकाए वह लौट आया। मदनरेखा को पाने के लिए वह कई गुप्त योजनाएँ बनाने लगा।

मदनरेखा इस विष घूंट को चुपचाप पी गई। पति से भी उसने इस बात की चर्चा नहीं की। उसे डर था, कहीं इस छोटी-सी बात पर भाई -भाई में मन-मुटाव न हो जाए।

मणिरथ का दुष्प्रयत्न

मणिरथ ने एक बार युगबाहू से कहा- "बंधु! सीमा पार के कुछ क्षेत्रों में अशांति बढ रही है। उपद्रवी तत्त्व सिर उठा रहे हैं, अत. मुझे वहाँ जाना जरूरी है।"

युगबाहू ने विनयपूर्वक कहा- "महाराज! मेरे होते आप को उधर जाने की जरूरत क्या है? आप यहीं रहिए, मैं स्वयं सेना लेकर जाऊगा और सब कुछ ठीक कर आऊँगा।"

मणिरथ तो यही चाहता था। युगबाहू के प्रस्थान की तैयारी होने लगी। मदनरेखा से युगबाहू ने जब अपने युद्ध-प्रस्थान की स्वीकृति माँगी तो वह चौक गई। उसे मणिरथ के षड्यंत्र की बू आने लगी। उसका चेहरा फक हो गया। युगबाहू ने धैर्य बधाकर कहा- "मै कई बार बडे-बडे युद्धों मे गया, तुमने सदा हँसी-खुशी से मुझे बधाकर विदा किया, मै विजय ध्वज फहराकर ही आया। आज इस छोटी-सी वात पर तुम इतनी चिंतित, उदास क्यों हो गई?"

युगबाहू के बार-बार पूछने पर मदनरेखा ने उस दिन की घटना सुनाई। सुनते ही युगबाहू का हृदय तडप उठा किंतु मदनरेखा को आश्वस्त करने के लिए वह बोला-" मेरे भाई इस प्रकार का नीच-विचार नहीं कर सकते, हो सकता है वे किसी अन्य कारण से आए हो, और तुमने उन्हे गलत समझ लिया। वहम और गलतफहमी से वडे-वडे साम्राज्य चौपट हो जाते हैं, इसलिए तुम मेरे भाई पर किसी प्रकार का वहम मत करो।"

चतुर मदनरेखा सब कुछ समझ रही थी। फिर भी उसने पति को प्रसन्न करने के लिए कहा-" प्राणेश ! हो सकता है आपका ही अनुमान ठीक हो, फिर भी युद्ध मे जाते समय सावधान रहिए।

मदनरेखा की अश्रुभीनी विदाई लेकर युगबाहू ने सीमा पार युद्ध के लिए प्रस्थान किया। पीछे से मौका देखकर मणिरथ ने मदनरेखा को फुसलाने की अनेक चेष्टाए की। किंतु, उसकी कडी फटकार सुनकर मणिरथ का साहस टूट गया। इधर शीघ्र ही शत्रुओं का दमन कर युगबाहू राजधानी सुदर्शनपुर को लौट आया।

कुछ समय बाद मदनरेखा गर्भवती हुई। गर्भ के समय मे शाति, प्रसन्नता और शुद्ध वातावरण मे रहने के लिए पति-पत्नी नगर के बाहर उपवन मे ही रहने लगे। इधर मणिरथ के हृदय को काम-ज्वालाएँ जलाने लगी। वह मदनरेखा को पाने के लिए वडा वैचेन हो गया। और कोई रास्ता नहीं देखकर उसने युगबाहू को मार डालने का निश्चय किया। सोचा-" *अनाथ असहाय नारी आखिर कहाँ जाएगी? विवश हो फिर सीधी मेरे अचल मे ही सहारा लेगी।*"

बन्धु हत्या

रात के गहन अधकार मे मणिरथ अकेला घोडे पर चढकर उपवन की ओर चल पडा। हाथ मे तलवार लिए जैसे ही वह उपवन के द्वार पर पहुँचा तो पहरेदारों ने रोका। मणिरथ ने ललकार कर कहा- "चुप रहो ! भाई से बहुत जरूरी काम अभी है, मुझे मिलना है।"

पहरेदार ने आगे बढकर जैसे ही राजा को रोकना चाहा, मणिरथ ने एक जबर्दस्त धक्का देकर उसे दूर फेक दिया। वह घोडे से उतर कर सीधा युगबाहू के शयनकक्ष मे पहुँच गया। पहरेदारो के शोर से मदनरेखा की नींद टूट गई थी। सावधान होकर उसने पति को जगाया- "महाराज कोई दुष्ट आ रहा है, सावधान हो जाइए !" युगबाहू ने जैसे ही खडे होकर सीढियो की ओर देखा, उद्भ्रात-सा मणिरथ हाथ मे नगी तलवार लिए आ

रहा था। युगबाहू को अभी भी विश्वास नहीं हुआ कि भाई उसके खून का प्यासा बनकर आया है। उसने उठकर जैसे ही बडे भाई के चरण छूने को सिर झुकाया, मणिरथ ने तलवार के एक झटके में ही उसे भूमि पर गिरा दिया। युगबाहू धडाम से गिर पडा। मदनरेखा चीख उठी। पहरेदार दौड़े, किन्तु तब तक हत्यारा मणिरथ घोड़े पर चढ कर कहीं भाग गया।

धर्म सहाय

मदनरेखा ने दौड़कर पति का सिर गोद में ले लिया। युगबाहू सिसक रहा था : मदनरेखा ने हृदय को मजबूत बनाया। उसने सोचा-"यह रोने का समय नहीं है। पतिदेव अंतिम सांस ले रहे हैं, परलोक की यात्रा को जा रहे हैं। यह मूल्यवान घड़ी उनके अंतिम उद्धार की घड़ी है। वह शांत, प्रसन्न होकर प्रस्थान करेंगे तो परलोक में भी शांति मिलेगी। यहाँ, अंतिम समय में क्रोध, रोष और दुर्विचारों में जलते-जलते जाएंगे तो परलोक में भी जलते रहेंगे।" मदनरेखा ने पति को पुकारा- 'पतिदेव ! शांत रहिए ! भूल जाइए, आपको किसी ने मारा है। सोचिए, अपना आयुष्य ही क्षीण हो गया है।" भाई पर क्रोध मत रखिए! मुझ पर मोह मत कीजिए, मृत्यु की घडी तो एक दिन आने ही वाली था। अब तो अपने परलोक का सुधार कीजिए ! भगवान का नाम लीजिए, नवकार मंत्र का स्मरण कर मन को प्रसन्न बनाइए प्राणिमात्र से क्षमा-याचना कर सबको अपना मित्र समझिए।"

मदनरेखा के शांत एवं प्रेरणादायी वचनों ने युगबाहू का हृदय बदल दिया। अंतिम समय में उसे सांत्वना और समाधि मिली, प्रभु का नाम लेते-लेते युगबाहू ने प्राण त्याग दिए।

वन की शरण

मदनरेखा का हृदय हाहाकार कर उठा। आॅखों से अश्रुधारा बहने लगी। अब तक वह पति को धैर्य बॅधा कर उसकी गति सुधारने मे लगी थी, पति के प्राण त्यागते ही उसका धीरज टूट गया ! उसने देखा, चारों और भयंकर सन्नाटा था। पहरेदार युगबाहू के पुत्र चंद्रयश को खबर देने राजधानी में दौडकर गया था, अभी तक लौटा नहीं था। मदनरेखा ने सोचा- "मणिरथ ने जिस दुष्ट उद्देश्य से युगबाहू की हत्या की है,वह उसे पूरा करने पर तुल गया है, वह मुझे पाने के लिए और भी कुछ अन्याय कर सकता है। मेरा धर्म तो खतरे मे है ही, कितु चंद्रयश का जीवन भी सुरक्षित नहीं है। अत. अपने शील की रक्षा के लिए, चंद्रयश की भलाई के लिए मुझे यहाॅ से भाग निकलना ही ठीक है। दुष्ट मणिरथ

को जब मैं न मिलूंगी तो वह चंद्रयश को अपने आप ही संभालेगा।'' मदनरेखा ने गहरा विचार किया और साहस बटोरा। दिल को पत्थर बनाकर मृत पति के सामने खडी हो दो क्षण प्रभु का नाम लिया और उपवन के पिछले रास्ते से जंगल की और निकल पडी।

भयंकर रात ! साय-सांय करता जंगल ! चारो ओर फैला घोर अधकार गर्भ की पूर्णस्थिति में भी मदनरेखा जंगल की ऊबड़-खाबड पगडंडियो पर अकेली चल रही है। भय तो अब उसके मन मे रहा ही नहीं। पति शोक से कभी-कभी ऑखे भर आती है, पर मन को समझा लेती है-''जो होनहार था, वह हो चुका है, पति की अंतिम घडी मे मैंने धर्म का सहारा दिया है, पति को अवश्य ही सद्‌गति मिली होगी- बस, मेरा कर्त्तव्य पूरा हो चुका''- यही सोचकर मदन रेखा मन को वज्र-सा बनाकर आगे चली जा रही थी।

पुत्र जन्म

सहसा मदनरेखा के पेट मे भयंकर दर्द उठा। एक वृक्ष के निकट वह वैठ गई। तारो के झिलमिल प्रकाश मे वह आसपास की भूमि को देख रही थी। वही उसने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया, पुत्र के हाथ मे पति के नाम की मुद्रिका बॉधकर उसे साडी के आधे टुकड़े में लपेटा और वृक्ष की डाल में लटका दिया। स्वयं शरीर को शुद्ध करने के लिए पास ही बहते एक झरने की ओर गई। स्नान आदि करके मदनरेखा उठने लगी तो एक मस्त हाथी ने उसे शुण्ड मे पकडकर गेंद की तरह आकाश मे उछाल दिया। उसी समय कोई विद्याधर विमान में बैठा इधर से गुजरा। मदनरेखा को गिरते देखकर उसने वीच ही मे झेल लिया। कुछ समय बाद मदनरेखा होश में आई। एक पुरुष के सामने स्वयं को देखकर वह भयभ्रात हो उठी ! उसे लगा- खाई से निकली और कुएं में जा गिरी। फिर भी साहस करके उसने कहा-''महाराज! आपने कृपा कर मुझे बचाया, इसके लिए मै आपकी कृतज्ञ हूँ। किंतु मेरा नवजात पुत्र वन में अकेला है, आप मुझे उसके पास जाने दीजिए।''

विद्याधर ने कहा- ' डरो मत ! मेरा नाम है मणिप्रभ विद्याधर ! मै अनेक विद्याओं का स्वामी और बहुत बडा राजा हूँ। आज तो मेरा सौभाग्य ही था कि तुम्हारे जैसी अनिंद्य सुंदरी का यों अचानक दर्शन हो गया। तुम जरूर विपत्ति से घिरी हो,पर घवराओ मत ! अब तुम्हारे दु.ख के दिन दूर हो गए, तुम चलो, मेरी महारानी वनकर संसार के सब सुख भोगो! और पुत्र की क्या चिंता है? वह तो वडा भाग्यशाली है। अव वह जगल मे नहीं.

किन्तु मिथिला पति पद्मरथ राजा के राजमहल में पहुँच गया है और वहाँ उसका लालन-पालन हो रहा है।"

पुत्र का सुख-संवाद सुनकर मदनरेखा का मन आश्वस्त हुआ किंतु स्वयं को जाल में फँसी देखकर वह घबरा रही थी। उसने कहा- "श्रीमान ! आप अभी कहाँ जा रहे थे। उसने कहा मेरे पिता श्री मणिचूड मुनि जो महाज्ञानी हैं उनके दर्शनार्थ जा रहा था, मदनरेखा ने कहा मुझे भी पहले उनके दर्शन करा दीजिये।

संत समागम

विमान में बैठकर दोनों ही मुनि के चरणों मे पहुँचे। ज्ञानी मुनि ने देखा- "एक ओर यह महासती ! शील रक्षा के लिए प्राणों को हथेली में लिए निकल पडी है, दूसरी ओर यह काम-विलासी पुत्र ! उसके शील को भंग करने पर तुला हुआ?" तभी अचानक एक दिव्य रूपधारी देवता आकाश से उतर कर मदनरेखा के चरणो में झुक आया। फिर उसने मुनि को नमस्कार किया। मुनि ने उपदेश दिया, मणिप्रभ का मन जाग उठा। उसे अपने दुर्विचारों पर पश्चात्ताप होने लगा। उसने मुनि के समक्ष ही परस्त्री-गमन का त्याग कर लिया, और मदनरेखा को बहन कहकर पुकारा।

मणिप्रभ ने देवता की ओर संकेत करके कहा-"गुरुदेव ! यह उलटी गंगा कैसे बह गई ?"

मुनि ने कहा- "मणिप्रभ ! गंगा सीधी ही बही है, यह देव इस महासती मदनरेखा के इसी भव का पति है- युगबाहू ! अंतिम समय में सती ने जो धार्मिक सहयोग किया, पति के मन को शांति और समाधि पहुँचाई, उस कारण यह दिव्य ऋद्धि वाला देव बना है। अपने उपकार का स्मरण कर प्रथम सती को नमस्कार किया, इसमे कोई अनुचितता नहीं है।

पति को देव रूप मे उपस्थित देखकर मदनरेखा की आंखों में हर्ष के आंसू उमड आये, हृदय भर गया।

युगबाहू देव ने पुनः नमस्कार कर कहा- "महासती ! तुम्हारे उपकार से मैं कभी ऋण मुक्त नहीं हो सकता। तुमने सच्चा पतिव्रत धर्म निभाया है। अंतिम घडी में यदि तुम्हारे अमृत-वचनों से मेरा हृदय शांत नहीं हुआ होता तो पता नहीं, मेरी कौनसी दुर्गति

हुई होती। जो गति भाई की हुई है, वही मेरी होती ...... यह सब तुम्हारा ही उपकार है....।''

जिज्ञासावश मदनरेखा ने पूछा- ''देवानुप्रिय ! उधर मेरे निकल आने के बाद क्या घटना चक्र घटा?''

युगबाहू देव- ''सती ! संसार में पाप हमेशा ही पापी को खा जाता है। मेरी हत्या करके मणिरथ जैसे ही नीचे उतर आया, पहरेदारों ने शोर मचाया। वह राजा था, फिर भी अन्यायी था, अन्याय उसे काटने लगा, वह डर कर घोडे पर चढकर जगल की ओर गया। कुछ ही दूर गया कि एक काले नाग पर घोडे का पांव लग गया। नाग ने फुफकार कर मणिरथ के पॉव में काटा, वह वही ढेर हो गया। चंद्रयश ने आकर जब मेरी मृत देह देखी तो फूट-फूटकर रो पडा। फिर मणिरथ और तुम्हारी खोज शुरु हुई। मणिरथ की मृतदेह जंगल मे मिल गई, तुम्हारा कोई अता-पता नहीं चला। अब धीरे-धीरे दु ख भुलाकर अपना राज्य संभाल रहा है, सुखी है।''

सुनते-सुनते मदन रेखा की ऑखे डबडबा आई। और बोली -

''देवानुप्रिय ! अब मेरे नवजात पुत्र का क्या हाल है?''

मदनरेखा ने पूछा।

''महासती ! तुम्हारा पुत्र बहुत ही भाग्यशाली है। तुम वृक्ष की डाल मे लटका कर जैसे ही शुद्धि करने को गई, पीछे से मिथिला नरेश पद्मरथ उधर आ पहुॅचे थे। बालक का धीमा रुदन सुनकर वे निकट आए, और उस तेजस्वी बालक को देखकर हर्ष विह्वल हो उठे। वह पुत्रहीन था, उसे लगा- भाग्य ने ही उसे यहॉ भेजा है, वह बालक को ले गया। और अपने स्व-जात पुत्र की भॉति उसका लालन-पालन कर रहा है।''

''देवानुप्रिय ! संसार का यह असाररूप मैं देख चुकी हूॅ। अब मेरी इच्छा है, सयम लेकर आत्म-कल्याण करूं, किंतु इससे पूर्व एक बार पुत्र का मुॅह देखना चाहती हूॅ।'' - मदनरेखा ने युगबाहू देव से कहा।

मदनरेखा की इच्छा देखकर देव युगबाहू ने महासती को मिथिलापुरी चलने का आग्रह किया। यह सब घटनाचक्र सुनकर मणिप्रभ विद्याधर भी गद्‌गद्‌ हो उठा था। उसने क्षमा मांगकर मदनरेखा को अपनी धर्म बहन बनाई। सबने मुनि को नमस्कार किया और

अपनी -अपनी दिशा की ओर चल पडे।

दीक्षा

मदनरेखा मिथिला में आई। आते-आते उसका हृदय बदल गया। पुत्र मोह से भी वह उदासीन हो गई। देव युगबाहू से उसने कहा- ''देवानुप्रिय ! अब मुझे पुत्र के पास नहीं, किंतु किन्हीं साध्वियों की संगति में पहुँचा दीजिए। मेरा मन अब संसार त्याग कर साध्वी बनने का निश्चय कर चुका है। जब मन विरक्त हो गया तो फिर पुत्र, परिवार का मोह कैसा, किसलिए ?''

मदनरेखा साध्वियों के पास पहुँचगई और दीक्षित होकर वह कठोर तपश्चरण में जुट गई।

भ्रातृ मिलन

पद्मरथ के राजमहलों में जो बालक पल रहा था उसका नाम रखा गया- नमि ! वह बचपन में ही बड़ा तेजस्वी और प्रखर प्रतिभाशाली था। युवा होने पर 'नमि' मिथिला के राजसिंहासन का स्वामी बना।

एक दिन नमि राजा का पट्ट-हस्ती, जो श्वेत हस्ती था, और राजा को बडा प्रिय था, मदोन्मत्त होकर जंजीरें तोड़ डाली और जंगल में भाग गया। हजारों सैनिक उसके पीछे दौड़े, पर उसे कोई पकड नहीं सके। दौडता-दौडता वह राजा चंद्रयश की सीमा में घुस गया। चंद्रयश के सीमारक्षक सुभटों ने उसे पकड़ लिया। श्वेतहस्ती को देखकर चंद्रयश बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उसे अपना पट्ट्-हस्ती बना लिया।

नमिराज ने जब यह समाचार सुने तो चंद्रयश से हाथी लौटाने की मांग की। चंद्रयश ने इस मांग को कायरता कह कर ठुकरा दिया। दोनों ही राजा युवा थे, तेजस्वी थे, वस बात की बात में युद्ध के नगारे बज उठे। दोनों ओर की सेनाएँ मैदान में आ डटीं।

तपःलीना महासती मदनरेखा ने जब चंद्रयश और नमि राजा के बीच युद्ध का संवाद सुना तो उसका सुप्त मातृत्व बिलख उठा। आज उन्हें कौन समझाए, कि एक हाथी के लिए भाई, भाई का खून बहाने जा रहा है। उसके सिवाय यह रहस्य और किसी को ज्ञात भी नहीं था ! अज्ञान और मोह के कारण अभी नर रक्त की नदियाँ वह जाएगी और हरी-भरी धरती नरमुंडों से श्मशान बन जायेगी। सती का करूणाशील हृदय पसीज उठा।

उसने वहाँ जाने का निश्चय किया।

मदनरेखा ने भारी हृदय से गुरुणीजी के समक्ष यह सब रहस्य प्रकट किया। गद्गद् हो गुरुणी जी ने कहा-" महासती ! ऐसे समय मे क्षण भर का भी विलब मत करो ! तुम्हारा एक अमृतवचन ही इस युद्ध अग्नि को शात कर सकेगा जाओ ! दो साध्वियो को साथ लेकर ! शांति का उपदेश करो ! लाखो निरपराधो की हत्या से बचाओ इस पवित्र भूमि को।"

महासती मदनरेखा सीधी राजा चद्रयश के खेमे मे पहुँची। युद्ध क्षेत्र मे साध्वियो का आगमन सुन चद्रयश चौंका, दूसरे ही क्षण, तप स्तेज से दीप्त श्वेतवसना मदनरेखा के रूप मे उसने अपनी माँ को देखा तो हर्ष विभोर होकर वह उनके चरणों मे झुक गया।

मदनरेखा ने सब स्थिति स्पष्ट की और बताया- "नमिराज कोई पराया नहीं, किंतु तुम्हारा ही छोटा भाई है।"

चद्रयश सुनते ही हर्ष से उछल पडा। उसके मन का रोष, स्नेह मे बदल गया। वह सीधा भाई से मिलने को चल पडा।

महासती मदनरेखा चंद्रयश से भी पूर्व नमिराज के निकट पहुँची। जब उसे ज्ञात हुआ कि यही उसकी जन्मदात्री मा है और जिसके विरुद्ध वह तलवार उठा रहा है, वह है उसका बडा भाई! सहोदर ! बस, इधर नमिराज भी भाई से मिलने को आतुर हो उठा। तभी चंद्रयश ने दौडकर छोटे भाई को बाहो में उठा लिया। छाती से चिपका लिया। हर्ष के आँसुओं से दोनो के हृदय भींग गए।

युद्ध भूमि मे प्रेम का यह सागर लहराता देखकर सब की आँखो मे स्नेह के बादल उमड आए। और युद्धभूमि स्नेह भूमि बन गई। 'महासती मदनरेखा की जय!' से आकाश पाताल गूँज उठे।

कर्मो की गति बडी विचित्र है राजा मणिरथ अपनी दुष्टता के कारण मरकर नरक मे गया। युगबाहु मदन रेखा की सहायता से महाऋद्धिवाला देव बना। महासती मदन रेखा अपने शुभ भावो के साथ उत्कृष्ट संयम पालकर मोक्ष मे पधारी तथा चद्रयश एव नमि भी कालान्तर मे संयम लेकर धर्म की उत्कृष्ट आराधना करते हुए सिद्ध-बुद्ध-मुक्त को प्राप्त हुए।

卐

1. परमात्म बत्तीसी

तर्ज- हरि गीतिका (रत्नाकरपच्चीसी)

मैत्री सकल-जग-जीव से, आनन्द गुणियों में रहे,
जो कष्ट पीड़ित जीव, करुणा-स्त्रोत उनके हित बहे।
विपरीत पथ पर चरण रख, जो नर यहां हैं चल रहे,
हे नाथ ! मेरी आत्मा, मध्यस्थ उनके प्रति रहे ।।1 ।।

है भिन्न आत्मा देह से, जो अमित शक्ति निधान है,
सब दोष से उन्मुक्त जिसका, सहज रूप महान् है।
ज्यों म्यान से तलवार को, हम पृथक करते हैं सदा,
हे जिन ! तुम्हारी पा कृपा, वह आत्म बल पाए सदा ।।2 ।।

हो दुःख या सुख शत्रु अथवा बन्धु का सहवास हो,
संयोग या कि वियोग हो, घर या अरण्य निवास हो।
ममता भरी जो भावना, वह सर्वथा ही दूर हो,
हे नाथ ! सबके प्रति सदा, सम मन मेरा भरपूर हो ।।3 ।।

अज्ञान तम को दूर करने में, तेरे दीपक-चरण,
मेरे हृदय का हो सदा, बस एकमात्र वही शरण।
होवे बसे या लीन हो, या कीलवत् दिल में गडे,
प्रतिबिम्ब सम हे मुनि शिरोमणि ! वे हृदय में हो पड़े ।।4 ।।

प्रतिक्रमण (प्रभु समीपे स्वात्मचिंतन)

भ्रमवश यहाँ चलते हुए, एकेन्द्रियादिक जीव-तन,
टुकडे किए या नष्ट उनको, हन्त ! वेपरवाह मन।
हो धूल में उनको मिलाया क्लिष्ट पीड़ा या दिए,
मिथ्या बने वे दोष सब, हे देव ! हमने जो किए ।।5 ।।

मुक्ति पथ प्रतिकूल गामी, मैं महा मति मंद हो,
इन्द्रिय कषायों के विवश, या दुष्टधि होकर अहो।
चारित्र-शुचिता का विलोपन, जो यहाँ हमसे हुआ,
मिथ्या बने वह हे प्रभो ! दुष्कर्म जो हमने किया ॥6 ॥

इस देह या मन, वचन से, या दुष्ट भाव कषाय से,
भव दुःख कारण पाप को, त्यागूँ सदा सदुपाय से।
जैसे भिषग् निज मंत्र से, करता सकल विष का हरण,
आलोचना गर्हा विनिन्दन, त्यों किए हमने वरण ॥7 ॥

होकर विमिति वश जो किया, अतिचार निर्मल नियम का,
अतिक्रम, व्यतिक्रम, भूलवश, विपरीत सेवन धर्म का।
उनके विशोधन के लिए, मैं आज निर्मल भाव से,
हूँ लौटता उन कलुष भावों, के महान् पडाव से ॥8 ॥

जो क्षति करे मन शुद्धि में, अतिक्रम उसे ही है कहा,
स्वीकृत नियम प्रतिकूल मति, व्यतिक्रम कहाता है महा।
वैषयिक सुख मन रमण, माना गया अतिचार है,
तल्लीन होना विषय में, मति भूल है अनाचार है ॥9 ॥

भ्रमवश अगर बोला यहां, कुछ भी अगर मैं हूँ वचन,
पद वाक्य मात्रा अर्थ, हीनाक्षर हुए जो भी कथन।
अपराध मेरा कर क्षमा, माँ भारती ! ऐसा करे,
कैवल्य से यह हृदय भर, अज्ञान-तम मेरा हरें ॥10 ॥

हो लाभ बोधि, समाधि फिर, परिणाम भी निर्मल रहे,
शिव सौख्य के संग आत्म की, उपलब्धियाँ होती रहे।
हे देवि ! तेरी वंदना से, हो अभीप्सित सिद्धियाँ,
चिन्ता-हरण-मणि ध्यान से, मिलती है जैसे ऋद्धियाँ ॥11 ॥

जो संस्मरण में आ रहे, मुनिवृन्द के द्वारा यहाँ,
होती है जिनकी प्रार्थना, नर देव सुरपति के यहाँ।
हैं वेद, शास्त्र, पुराण जिन का, नित्य गीत सुना रहे,
वह देव का भी देव मेरे, हृदय में आकर रहे ॥12॥

जो ज्ञान दर्शन सुख स्वभावों, से विमल मतिमान है,
जो बाह्य जग के विकृत भावों, से अलग द्युतिमान है।
परमात्मा वह प्राप्य है, पुरुषार्थ और समाधि से,
वह देव का भी देव मेरे, हृदय में आकर बसे ॥13॥

संसार के दुःख जाल को, जो नाश करता है सदा,
तीनों भुवन के जीव पर जो, दृष्टि रखता सर्वदा।
अन्तर्हृदय में योगि-जन, करते निरीक्षण हैं जिसे,
वह देव का भी देव मेरे, हृदय में आकर बसे ॥14॥

जो मोक्ष पथ का कथन करता, भाग्य-धाता है बडा,
जो जन्म् एवं मरण से, है सर्वथा बाहर खडा।
जो अतनु, तीनों लोक दृष्टा, दूर नित्य कलंक से,
वह देव का भी देव मेरे, हृदय में आकर बसे ॥15॥

संसार के सब जीव जिसके, हैं नियन्त्रण में चले,
रागादि सारे दोष वे, जिससे सदा रहते टले।
इन्द्रिय रहित वह ज्ञानमय है, दूर सर्व अपाय से,
वह देव का भी देव मेरे, हृदय में आकर रहे ॥16॥

जो व्याप्त सारे विश्व में, हित भाव से भरपूर है,
जो सिद्ध और विबुद्ध है, जो कर्म-रज से दूर है।
है नष्ट होती विकृति सारी, नित्य जिसके ध्यान से,
वह देव का भी देव मेरे, हृदय में आकर बसे ॥17॥

जो कर्म रूप कलंक दोषों से बसा अति दूर है,
ज्यों तम पटल से अलग रहता, सर्वथा रवि नूर है।

जो है निरंजन नित्य एक, अनेक का आधार है,
उस आप्त प्रभु की शरण मुझको, सर्वथा स्वीकार है ॥18॥

जिस वक्त इस संसार में, रहती नहीं भास्कर प्रभा,
करती प्रकाशित सकल जग, उस वक्त भी उसकी विभा
जो आत्म में संलीन एवं तेज बोधाधार है,
उस आप्त प्रभु की शरण मुझको, सर्वथा स्वीकार है ॥19॥

जो ज्ञान पूर्वक देखने पर, दिखता आधार है,
पर है पृथक् संसार से, उससे पृथक संसार है।
जो है अनादि अनन्त शिव, शुचि शुद्ध शान्ताकार है,
उस आप्त प्रभु की शरण मुझ को, सर्वथा स्वीकार है ॥20॥

जो कर दिया है नष्ट मूर्च्छा, मान मन्मथ शोक को,
भय नींद चिन्ता दुःख से, बाहर सदा रहता है जो।
ज्यों भस्म करता यह दावानल, सघन तरु-कान्तार है,
उस आप्त प्रभु की शरण मुझको, सर्वथा स्वीकार है ॥21॥

तृण मैदिनी पत्थर-शिला, काष्ठादि के आसन नही,
समभाव साधन हेतु ये, आधार हो सकते कही?
जो शत्रु अक्ष कषाय को, जीता सबल बल धार है,
बुध-जन सुनिर्मल आत्म को ही, मानता आधार है ॥22॥

न शांति साधन के लिए, आसन कभी आधार है,
न संघ मेल मिलाप एवं, लोक पूजा सार है।
इस हेतु तू हे जीव ! तज सब वासना संसार की,
दिन रात आत्मालीन बन, यह राह है उपकार की ॥23॥

ये बाह्य भौतिक तत्व सारे, है नही मेरे लिए,
मैं भी न अपना हो सकूँगा, उन सभी पर के लिए।
यूँ छोड़ कर सब बाह्य को, मन में वखूवी ठान कर,
तू स्वस्थ हो जा मोक्ष हित हे भद्र ! जीवन दान कर ॥24॥

निज आत्मा में आत्मा को, देखकर आगे चलो,
फिर-ज्ञान दर्शन शुद्धता से, हृदय को उज्ज्वल करो।
जो तपी अपने चित्त को, करता अटल एकान्त है,
चाहे जहाँ हो वास उसका, हृदय निर्मल शांत है ॥25॥

है आत्मा शाश्वत मेरी, और एक ही है सर्वदा,
कैवल्य भावों से भरा, निर्मल स्वभावी है सदा।
ये बाह्य सारे तत्व जग के, आत्म छवि से दूर हैं,
अपने नहीं, ये कर्मभव, जो नाश से भरपूर हैं ॥26॥

जिसका न तन के साथ है, अपनत्व इस संसार में,
उसका भला ! हो संग क्या, फिर पुत्र मित्र सुदार में।
प्रिय देह से यदि चर्म को, हम अलग कर देवें यहाँ,
तो रोम-कूप शरीर में, यह बोल ठहरेगा कहाँ ॥27॥

संसार रूप अरण्य में, दुःख के अनेक प्रकार हैं,
जो भोगती यह आत्मा, संयोग के आधार है।
अतएव काया वचन मन से, तज सदा संयोग को,
मन में जगी है कामना, यदि प्राप्त करना मोक्ष को ॥28॥

सारे विकल्पो को हटा, निज आत्मा को पहचान तू,
संसार-वन में भ्रमण का, कारण इन्हीं को मान तू।
जड़ भिन्न तेरी आत्मा, ऐसा हृदय में जान तू,
बस लीन हो परमात्म में, बनजा महान्-महान् तू ॥29॥

हमने किए जो कर्म पहले, जड प्रकृति के संग हैं,
ये शुभ-अशुभ फल मिल रहे, हम तो उन्हीं के अंग हैं।
पर का दिया यदि लाभ हो, गर बात यह स्वीकार हो,
तब तो स्वयं कृत कर्म सारे, जगत के बेकार हों ॥30॥

निज कर्म का फल प्राप्त करते, जीव सब संसार के,
कोई नहीं दाता यहाँ, उपकार या अपकार के।

इस तरह सब सोच मन को, जो बनाता है अटल,
पर-दान को भ्रम जान अपनी, बुद्धि को करता विमल ॥31॥

जो अमितगति का वन्द्य है, विभु रूप वह व्यापक महा,
वह हृद्य है अनवद्य है, है भिन्न इस जरा से अहा।
जो ध्यान करते हैं निरन्तर, लाभ वे करते उन्हें,
वे प्राप्त करते मोक्षश्री, कुछ भी न फिर दुर्लभ जिन्हें ॥32॥



नमिराज ऋषि के उत्तर

(तर्ज - जय अरिहंताणं प्रभु.....)

जय नमिराज ऋषि, जय 'कंकण' बुद्ध ऋषि।
अमर तुम्हारे उत्तर, जैसे सूर्य शशि, जय-जय नमिराज ऋषि ।ध्रुव।
जाति स्मरण हुआ जब, राज्य ऋद्धि नारी,
सब छिटका कर तत्क्षण, दीक्षा उर धारी ।1॥ जय जय नमि ..
शक्र इन्द्र तब पूछे, विप्र रूप निज कर के।
दृढ़ वैरागी नमिऋषि, देते यो उत्तर ॥2॥ जय जय नमि
'दीक्षा' नहीं दुखकारी, 'स्वारथ' दु खकरी।
स्वारथ कारण रोती, यह मिथिला सारी ॥3॥ जय जय नमि .
ममता बन्धन तोडा, वह सुख से जीता।
जग के दु ख सकट से, वह न दु खी होता ॥4॥ जय जय नमि ..
निजपुरी मुक्ति पाने, हेतु युद्ध करना।
नश्वर जड नगरी की, क्या रक्षा करना? ॥5॥ जय जय नमि .
आत्मा का घर ऊपर, मुझे वहॉ जाना।
जो नास्तिक है उसने, यहॉ पर घर माना ॥6॥ जय जय नमि .
राजनीति है दूषित, कर्म वहुत वंधते।
सच्चे दण्डित होते, झूठे बच जाते ॥7॥ जय जय नमि .

बाह्य युद्ध का कर्त्ता, झूठा सुख पाता।
आत्म युद्ध कर्त्ता ही, सच्चा सुख पाता ॥8॥ जय जय नमि...
लाख-लाख प्रति मास भी, हो कोई गो दाता।
उससे भी मुनि श्रेष्ठ है, अभय-दान दाता ॥9॥ जय जय नमि...
नवकार-सी जिनमत की, है जैसे पूनम।
मास खमण परमत का, नहीं अमावस सम ॥10॥ जय जय नमि...
मेरु समान असंख्य, स्वर्ण सिद्धि पावे।
पर नभ सम तृष्णा का, अन्त नहीं आवे ॥11॥ जय जय नमि...
'नारी'कांटा विष है, और महा-नागिन।
चाह मात्र भी उसकी महा दुर्गति कारण ॥12॥ जय जय नमि...
ऐसे उत्तर सुनकर, 'शक्र' प्रसन्न हुए।
सच्चा रूप प्रकट कर, नत-मस्तक हुए ॥13॥ जय जय नमि...
फिर निज मुख से उनकी, करी बहुत कीर्ति।
धन वैराग्य आपका, पाओगे सिद्धि ॥14॥ जय जय नमि...
उत्तम करणी करके, उत्तम गति पाए।
"पारस" तू भी यो बन, नीरज हो जाए ॥15॥ जय जय नमि...

श्री उत्तराध्ययन-सूत्र अध्ययन नव के आधार पर।



निर्वाण का मार्ग

(तर्ज - कितना बदल गया इन्सान)

सम्यग् ज्ञानी, सम्यग् दर्शी, सम्यग् संयमवान,
उसी को मिलता है निर्वाण ॥टेर॥
शास्त्र शास्त्र में, स्थान स्थान पर बोल गये भगवान,
उसी को मिलता है निर्वाण ॥

जीव तत्व हूँ, जड से निराला, पुण्य शुभ्र है पाप है काला ।
सवर बांध है आश्रव नाला, बंध बंध निर्जरा उजाला ॥
मोक्ष मुक्ति है यो जो हो इन, नव तत्वों का जान ॥1॥ उसी को ..

देव वही जो अरिहंत हो, गुरू वही जो निरग्रन्थ हो।
धर्म वही जो दयापूर्ण हो, शास्त्र वही जो जिन भाषित हो।
जिस प्राणी की नस नस मे यो, अचल भरी श्रद्धान ॥2॥ उसी को ..

पंच महाव्रत को स्वीकारे, या अणुव्रत ही अंगीकारे।
जैसी शक्ति वैसा धारे, पर प्रमाद को दूर निवारे॥
सिद्ध साक्षी से निरतिचार जो, पाले प्रत्याख्यान ॥3॥ उसी को...

केवल कहते "पारस" सुन रे, सच्ची सीख हृदय मे धर रे।
ज्ञाता दृष्टा व्रतधर बन रे, जिससे तेरा नर भव सुधरे ॥
पूर्व पुण्य से तुझे मिला यह, मानव जन्म महान॥4॥ उसी को...



1. अरिहन्त (तीर्थंकर) के चौंतीस अतिशय

सर्वसाधारण में जो विशेषता नहीं पाई जाती, उसे अतिशय कहते है। यह अतिशय विशिष्ट शुभ नाम तथा उच्च गोत्र के उदय से होता है।

1. भगवान के रोम, नख, केश, बढे नहीं, शोभनिक लगे।
2. भगवान के शरीर में औषध रूपी लेप लगे नही।
3. रक्त और मांस गौ दूध से भी अधिक उज्ज्वल धवल और मधुर होवे।
4. भगवान के श्वासोच्छवास पद्म कमल से भी अधिक सुगन्धित होवे।
5. भगवान आहार और निहार करें तो छद्मस्थ के नजर नहीं आवे।
6. जब भगवान चलते है तो आकाश मे गरणार शब्द करता हुआ धर्म चक्र चले और जब भगवान ठहरते है तब ठहरता है।
7. आकाश में तीन छत्र घूमे।
8. उत्तम श्वेत चमर ढुले।
9. निर्मल स्फटिकमय सिहासन चले।
10. हजार लघु पताकाओ से युक्त इन्द्र ध्वजा आगे चले।
11. अनेक शाखाओं और प्रशखाओं से युक्त पत्र, पुष्प, फल आदि सुगन्धवाला भगवान से बारह गुना ऊँचा अशोक वृक्ष भगवान पर छाया करे।
12. शरद ऋतु के जाज्वल्यमान सूर्य से भी बारह गुना अधिक तेज वाला अंधकार का नाशक प्रभामण्डल तीर्थकर प्रभु के पृष्ठ भाग मे दिखाई देवे।
13. तीर्थकर भगवान जहॉ-जहॉ विहार करते है, वहॉ की जमीन गड्डे या टीले आदि से रहित, समतल होती है।
14. ववूल आदि के साथ कॉटे उल्टे हो जावे।
15. सभी ऋतुएं अनुकूल सुहावनी होवे।

16. भगवान के चारों ओर एक-एक योजन तक मद-मद शीतल और सुगन्धित वायु चलती है जिससे सब अशुचि वस्तुएँ दूर होवे।

17. भगवान के चारो ओर बारीक-बारीक सुगन्धित अचित जल की वृष्टि एक-एक योजन मे होती है जिससे भूमि धूल रहित होवे।

18. भगवान के चारो ओर देवताओ द्वारा विक्रिया से बनाये हुए अचित्त पाँचो रंगो के फूलो का घुटने प्रमाण ढेर लगे।

19. अमनोज्ञ (अच्छे न लगने वाले) शब्द वर्ण, रस, गध और स्पर्श का नाश होवे।

20. मनोज्ञ शब्द वर्ण, गंध, रस और स्पर्श का उद्भव होवे।

21. भगवान के चारो और एक-एक योजन मे स्थित परिषद् धर्म-उपदेश सुने और वह धर्म-उपदेश सभी को प्रिय लगे।

22. भगवान धर्म-उपदेश अर्द्ध-मागधी भाषा मे फरमाएं।

23. आर्य देश और अनार्य देश के मनुष्य, द्विपद (पक्षी), चतुष्पद (पशु) और अपद (सर्प आदि) सभी भगवान की भाषा को समझेऔर सुख की अनुभूति करे।

24. भगवान के दर्शन करते ही और उपदेश सुनते ही जाति वैर-जैसे सिह और बकरी का, कुत्ता और बिल्ली तथा भवान्तर (पिछले भव जन्य) का वैर शात हावे।

25. भगवान का प्रभावपूर्ण ओर अतिशय सौम्य स्वरूप देखते ही अपने-अपने मत का अभिमान रखने वाले अन्य दर्शनवादी अभिमान को त्याग कर नम्र बने।

26. भगवान के पास वादी, वाद करने के लिये आते है किन्तु उत्तर देने मे असमर्थ हो जाते है।

27 भगवान के चारो तरफ पच्चीस-2 योजन तक इति-भीति अर्थात् टिड्डी और मूषको आदि का उपद्रव नहीं होता।

28. महामारी, हेजा आदि का उपद्रव नहीं होवे।

29. स्वदेश के राजा का, और सेना का उपद्रव नहीं होवे।

30. परदेश के राजा का, ओर सेना का उपद्रव नहीं हावे।

31. अतिवृष्टि अर्थात् बहुत अधिक वर्षा नहीं होवे।

32. अनावृष्टि कम वर्षा या वर्षा का अभाव नहीं होवे।

33. दुर्भिक्ष अकाल पडता नहीं।

34. जिस देश मे पहले ईति- भीति, महामारी, स्व-परचक्र का भय आदि का उपद्रव हो वहाँ भगवान का पदार्पण होते ही तत्काल उपद्रव दूर हो जाता है।

इन चौंतीस अतिशयों में से चार (2, 3, 4, 5)अतिशय जन्म से होते हैं। 15 (6-20) केवल ज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् और शेष 15 देवकृत होते है।



2. दान

भारतीय दर्शन में दान का बहुत अधिक महत्त्व है। दान को सर्वोत्तम कार्य कहा गया है। धन की शोभा एवं सार्थकता दान करने मे ही हैं। यह इस लोक और परलोक का सर्वश्रेष्ठ मित्र, सरलता का साथी, लोभ का दुश्मन, माया के बन्धन को तोडने वाला एवं विकारों का नाश करने वाला यह मोक्ष मंजिल का प्रथम सोपान हैं।

दान का अर्थ- दान 'दा' धातु से बना है जिसका अर्थ है देना। जो दिया जाए वह दान। वापस पाने की इच्छा से दिया गया दान, दान नहीं होता। प्रशंसा, प्रतिष्ठा पाने, आडम्बर बढाने के लिए बदले की भावना से दिया गया दान, दान नहीं व्यापार है। 'हस्तस्य भूषणं दानम्' हाथ का आभूषण दान है।

नीतिकारों ने धन की तीन गति बताई है दान, भोग और नाश अर्थात् जो न दान देता है और न भोगता है, उसके धन का नाश हो जाना अवश्यम्भावी है। धन होने पर भी जो न देता है, न भोगता है तो वह केवल उसकी रखवाली करता है, चौकीदार है जैसे- मम्मण सेठ। दान के पीछे कोई कामना, स्वार्थ लोभ नही होना चाहिए।

दान के प्रकार

(1) आहार दान- भोजन का दान सबसे प्रथम दान बताया है। मुनि एवं साधु भगवन्तों का आहार दान धर्म है, इसमे पापकर्म की निर्जरा होती है जैसे- शालिभद्र, सुबाहुकुमार आदि। गरीबों को भी दान देने मे धर्म और पुण्य का अर्जन होता है। जैसे-

राजा प्रदेशी।

(2) औषध दान- औषध दान का महत्त्व शव्दो मे प्रकट नहीं किया जा सकता। औषध दान पाकर जव रोगी निरोगी होता है तो उसे सुख एव संतोष की अनुभूति होती है। कहा भी है- 'पहला सुख निरोगी काया।'

(3) ज्ञान दान- विद्या दान अनुपम दान है। ज्ञान विना मनुष्य अन्धा होता है। विद्याविहीन मनुष्य की स्थिति पशुवत होती है, जिस प्रकार किसी अन्धे व्यक्ति को ऑखे मिल जाए तो वह कितना आनन्दित होता है, अज्ञानी को विद्या का दान मिलने पर वह अतीव प्रसन्न होता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारो पुरुषार्थ ज्ञान से सिद्ध होते है। प्रभु महावीर ने भी पहले 'ज्ञान' और फिर 'आचरण' को महत्व दिया है। ज्ञान से विवेक प्राप्त होता है और विवेक समस्त सफलताओ का प्रथम चरण है।

(3) अभय दान- किसी मरते हुए प्राणी को वचाना तथा किसी सकट मे पडे प्राणी का उद्धार करना, भयभीत प्राणियो को निर्भय करना अभयदान है। 'दाणाण सेटठं अभयप्पयाणं' अर्थात् दानो मे श्रेष्ठ अभय दान है। भगवान महावीर ने फरमाया है- सभी जीव जीना चाहते है, मरना कोई नहीं चाहता। अत जीवो पर दया करना परम धर्म है। अभयदान द्वारा कई आत्माओ ने अपने भव भ्रमण का अन्त कर दिया।

सुपात्र दान- सुपात्र दान का सर्वाधिक महत्त्व है। श्रावक के वारह व्रतो मे अंतिम व्रत अतिथि सविभाग व्रत है। जैन आगमो मे सुपात्र को तीन भागो मे विभक्त किया है-

(1) सम्यक् दृष्टि- चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरति सम्यक दृष्टि वह है जो वीतराग देव, निर्ग्रन्थ गुरु और केवली भाषित धर्म पर दृढ श्रद्धा रखता है किन्तु चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से व्रत ग्रहण नहीं कर सकता।

(2) देशविरति श्रावक- द्वितीय श्रेणी मे श्रावक आते है, जो जीवादि नवतत्त्व एव पच्चीस क्रिया के जानकार होते है तथा चारित्र मोहनीय कर्म का क्षयोपशम कर देशत अहिसा, सत्य, अचोर्य आदि वारह व्रतो व श्रावक की ग्यारह प्रतिमा आदि को ग्रहण करते है, इनसे भी निर्जरा होती है।

(3) निर्ग्रन्थ मुनि- सर्वोत्तम सुपात्र निर्ग्रन्थ मुनि है जिन्होंने संसार के सम्पूर्ण ऐश्वर्य और भोग-विलास को ठुकराकर हिसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य, परिग्रह आदि का तीन करण- तीन योग से सर्वथा त्याग कर दिया है। इन्हें प्रमोद भाव से चारों प्रकार

के निर्दोष पदार्थ देने से महान् निर्जरा होती है। असण, पाण, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोरहण और पीठ, फलक, शय्या संस्तारक (आसन), औषध, भेषज (चूर्ण आदि) देते समय चित्त, वित्त और पात्र की शुद्धता होनी चाहिए। देते समय दाता का मन शुद्ध, निष्काम होना चाहिए। यह चित्त की विशुद्धता है जो वस्तु दी जा रही है, वह प्रासुक एवं शुद्ध होनी चाहिए, यह वित्त की विशुद्धता, लेने वाला ज्ञान-दर्शन- चारित्र रूपी रत्नत्रयी का आराधक हो, यह पात्र की विशुद्धता है। नि स्वार्थ भाव से देने वाला, संयम निर्वाहार्थ लेने वाला, दोनो दुर्लभ है। कहा है-

'दुल्लहाओ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा'। (दशवै-5) संगम ग्वाला बडी कठिनाई से खीर प्राप्त कर संयमी मुनि को प्रतिलाभित करने की भावना भाता है। 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'। संगम को मासखमण का तप करने वाले घोर तपस्वी मुनि का योग मिलता है। उसकी प्रमोद भावना उमडती है। वह बडी श्रद्धा से खीर बहराता है। उत्कृष्ट भावना से बहराने के कारण वह महान् ऋद्धिशाली शालिभद्र बनता है।

सिर्फ द्राक्षा (दाखो) का धोया हुआ पानी साधु को बहराकर शंख राजा ने तीर्थकर नाम कर्म का उपार्जन किया और भगवान अरिष्टनेमी के रूप मे अवतरित हुए। नयसार के भव मे दिए गए दान के कारण भगवान महावीर के जीव ने सम्यक्त्व का स्पर्श किया। इस प्रकार सुपात्र दान के द्वारा संसार को सीमित करने वाले अनेक दृष्टान्त जैनागमो के स्वर्णिम पृष्ठों पर आज भी अंकित है।

सुपात्र को ही दान देना एवं अन्य किसी दु.खी प्राणी को दान नहीं देना यह धारणा नितान्त गलत है। संसार में जितने भी प्राणी हैं, जो दुखी हैं, संतप्त हैं, उनको देखकर उनके प्रति अनुकम्पा भाव लाना एवं उनका दुःख दूर करने का प्रयास करना भी दान की श्रेणी में आता है। अनुकम्पा दान सम्यक्त्व का लक्षण है। राजा प्रदेशी ने अपनी राज्यश्री को चार भागों में विभक्त कर एक भाग में विशाल दान शाला खोली। ऐतिहासिक राजा कुमारपाल ने दीनहीन प्राणियों के लिये भोजन, वस्त्र आदि की विशेष व्यवस्था की थी और इन्होंने महान् पुण्य का अर्जन किया।

दान के साथ भावना का सम्बन्ध- दान विवेकपूर्वक एवं शुभ भावो से दिया जाना चाहिए ताकि लेने वाले के सम्मान को ठेस नहीं पहुँचे और देने वाले के मन में अभिमान उत्पन्न न होवे। दान देते समय भावना प्रशस्त रहना चाहिए जिसकी ऐसी

भावना होती है, वैसा ही फल प्राप्त होता है। महासती चन्दनवाला ने प्रभु महावीर को उडद के बाकले दिये जिस श्रद्धा भाव से उसने बहराया, वह हृदय को गद्‌गद् कर देता है। उसके हर्ष का पार नहीं रहता। नयनो मे आनन्दाश्रु भर आते है, शरीर पुलकित हो जाता है। नागश्री ब्राह्मणी द्वारा अशुभ भाव से दिया गया कटुक शाक का आहार ससार परिभ्रमण का कारण बनता है। महाराजा श्रेणिक की आज्ञा से कपिला दासी द्वारा दिया गया भाव-विहीन दान अर्थविहीन रहा अशुभ, अशुद्ध भावना वन्ध का कारण है एवं ससार मे भटकाने वाली है। शुभ भावना मुक्ति का सोपान है। दान मे वस्तु का नहीं बल्कि भावो का महत्त्व है। कहा भी है 'भावना भवनाशिनी' अर्थात् भावना भव-भवान्तर का नाश करने वाली होती है। आत्मा की सद्‌गति के लिए भाव - शुद्धि अनिवार्य है।

दान का महत्व- जैन धर्म का आधार दान ही है, श्रमण जीवन[1] एव श्रावक जीवन का मूल दान है। दान दुर्गति का नाश करता है। मनुष्य के हृदय को विशाल एव विराट बनाता है। दान मानव जीवन मे प्रेम दया-करूणा का स्रोत प्रवाहित करता है। दान के द्वारा ममत्व बुद्धि (मेरे तेरे की भावना) एव सग्रह वृत्ति का नाश होता है। दान के द्वारा समता, सरसता, सहृदयता, अनुकम्पा, करूणा, मैत्री जैसी कई धाराएँ एक साथ प्रवाहित होती है। हमारे आदर्श 24 तीर्थकर दीक्षा के पूर्व 1 वर्ष तक लगातार दान देते हैं। मोक्ष के चार उपाय दान, शील, तप, भावना है। इनमे प्रथम स्थान दान को ही प्रदान किया गया है।



1 छः काया के जीवो को अभयदान साधुत्व का प्रथम चरण है।

सुभाषित

दान- चीडी चोच भर ले गई, घटीयों न नदियन् नीर
दान दिये धन ना घटे, कह गये दास कबीर।

दान- फूल खिलते हैं बहुत मगर सुगंध देता है कोई-कोई
पैसा कमाते हैं बहुत, मगर दान करता है कोई-कोई।

तप- तप जीवन की शान है, करने वाला जग मे महान है
जिनवाणी का कहना भी है, तपस्वी के चरणो में झुकता जहान है।

तप - सुनने का सार है, तप से भवसागर पार है।
जिह्वा से नहीं गाई जा सकती, क्योंकि तप की महिमा अपरंपार है।

भाव- भाव ही भव और भाव ही भगवान है
धन और यौवन तो सिर्फ मेहमान है।

भाव- भावे भावना भाईये
भावे दीजे दान
भावे धर्म आराधिये
भावे केवल ज्ञान। पावे पद निर्वाण।

शील 1. शील रतन मोटो रतन, सब रतनां की खान।
तीन लोक की संपदा, रही शील में आन।

2. शील रतन के पारखुं, मीठा बोले वैन।
सब जग से ऊँचा रहे, जो नीचा राखे नैन॥

3. काम भोग प्यारा लगे, फल किम्पाक समान।
मीठी खाज खुजावतां, पीछे दुःख की खान॥



श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा, बोर्ड, बीकानेर

जैन संस्कार पाठ्यक्रम परीक्षा

(भाग आठ) पूर्णांक : 100

समय 3 सामायिक (सामायिक की हाँ/ ना, कितनी . ..)

नोट . सामायिक नहीं करने वाले परीक्षार्थी के 3 अक कम किए जाएगे।

---

1. शास्त्र पाठ की पूर्ति करो – 10
   1 तिक्खुतो . .. . . णमसिता।
   2 देवाणुप्पियाण . गिहि धम्म।
   3 इटट्ठेइट्ठरुवे . . .. . प्रियदसणे।

2. निम्न शब्दों को शुद्ध कीजिए :– 05
   1. सुवीवागाण 2 धारीणी पमोख्ख 3 पूवाणुपूवि
   4 वदिता णम्मसिता 5 त्रिकरनशुदेन

3. निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखो 20
   1 सुवाहुकुमार ने पूर्व भव मे ऐसा क्या किया जिससे सभी जनो के प्रिय पात्र बने।
   2 सुवाहुकुमार जब प्रभु महावीर के पास धर्म श्रवण किया तब की चर्चा लिखे।
   3 सुखविपाक सूत्र के प्रमुख नायको के नाम लिखो ?
   4 स्थविर के कितने प्रकार है ? समझाइए।
   5 सुवाहुकुमार की संयम के बाद का जीवन उल्लेखित करे।

4. निम्न वाक्यावली सही /गलत है – 5
   1 अनशन उनोदरी करना चरण सत्तरी है।
   2 बीस बीघा का एक बिस्वा होता है।
   3 श्रावक जी निरपराधी सापेक्ष हिंसा करता है।
   4 धन कुटुम्ब, माता-पिता मे एकाग्र दृष्टि रखना धर्म [illegible] है।
   5 12 वर्ष की सयम वाला साधु अनुत्तर विमान के [illegible]

5. निम्न प्रश्नो के उत्तर लिखें – 15
   1. आठ मास की श्रावक की परिज्ञा कौन सी है [illegible] ?
   2 किस गुणस्थान मे समसमयवर्ती [illegible]
   3 मोहनीय कर्म के उदय के [illegible]
   4 शाश्वत गुण कितने होते है ?
   5 मिथ्यात्व गुण [illegible]

6. प्रतिमा किसे कहते हैं, श्रावक की कितनी प्रतिमा होती है नाम लिखो तथा उसमें कितना समय लगता है ? 5

7. किसने किससे और क्यों कहा संक्षेप में लिखो :- 10

1. तुम्हारा एक भाग्यशाली पुत्र होगा।
2 प्रिये ! इस चद्रवदन पर ऑसू की धारा का क्या कारण है ?
3 भद्रे ! तुम्हारा पुत्र तो हम सबके लिए वंदनीय हो गया है ?
4 मुझे एक अनुज बंधु की आवश्यकता है।
5 जब मन विरक्त हो गया तो फिर पुत्र परिवार का मोह कैसा।

8. निम्न प्रश्नों के उत्तर एक शब्द में दीजिए :- 05

1. युगबाहु के बड़े भाई कौन थे ?
2 अरिष्ट नेमी भगवान के समय हार्ट फेल किसका हुआ ?
3. चंद्रयश किसका बेटा था ?
4. युद्ध क्षेत्र मे कौन-सी साध्वी गई ?
5 भद्रा माता ने किसे नहीं पहचाना ?

9. पूर्ति कीजिए :- 10

1 है भिन्न .... निधान है।
2 अमर तुम्हारे ... . नमिराज ऋषि।
3. पंच महाव्रत . . अंगीकारे।
4. हो लाभ .. निर्मल रहे।
5 सम्यक ज्ञानी .... निर्वान।

10. अतिशय किसे कहते हैं ? तीर्थकरों के जन्म अतिशय कौन-से होते हैं। 05

11 दान के मुख्य भेदों को वताते हुए श्रेष्ठ दान को समझाइये ? 05

12. प्रभु के भाषा के संवंध में अतिशय लिखो ? 05

श्री अखिल भारत वर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

मुख्य उद्देश्य

- समता समाज की रचना।
- व्यसन मुक्त राष्ट्र का निर्माण।
- जीवदया, स्वधर्मी सेवा, मानव सेवा की विभिन्न प्रवृत्तियों का संचालन।
- जैन संस्कृति, धर्म, दर्शन और आचार के शाश्वत सिद्धान्तों का लोक भाषा में प्रचार।
- जन कल्याणकारी सहज-सुबोध साहित्य का निर्माण।
- सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र की रक्षा एवं वृद्धि हेतु शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था।
- समाज में धार्मिक चेतना के अभ्युत्थान हेतु आध्यात्मिक, नैतिक, चारित्रिक, शैक्षणिक विकास के कार्य करना।
- धार्मिक परीक्षा शिविर व शिक्षा के माध्यम से स्वाध्यायी तैयार करना।
- जैन धर्म के विभिन्न पहलुओं को जानने हेतु प्रयासरत शोधार्थियों एवं विद्वानों को यथोचित सहयोग प्रदान करना।
- धार्मिक, आध्यात्मिक व नैतिक शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम निर्धारित कर सम्यक् ज्ञान का प्रचार करना।